१

आर्याभिविनयः

ग्रन्थ परिचय

महर्षि ने '**आर्याभिविनय**' नामक लघु ग्रन्थ द्वारा **ईश्वर के स्वरूप** का ज्ञान कराया है। वेदों के मूल मन्त्रों का हिन्दी भाषा में व्याख्यान करके ईश्वर के स्वरूप का बोध कराया है। ईश्वर के स्वरूप के साथ-साथ **परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना** तथा **धर्मादि विषयों** का भी वर्णन है।

इस ग्रन्थ में केवल दो वेदों **ऋग्वेद (५३ मन्त्र)** और **यजुर्वेद (५४ मन्त्र)** से ही मन्त्र लिये गये हैं। इसके अतिरिक्त **एक मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक** का भी है। मन्त्रों का परमेश्वर सम्बन्धी एक प्रकार का ही अर्थ (वह भी संक्षेप में) किया है। अन्यथा ग्रन्थ का आकार बढ़ जाता। ऋषि दयानन्द के शब्दों में ''**इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहार शुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य न फँसे।**'' (आर्याभिविनय की उपक्रमणिका से उद्धृत)

इस ग्रन्थ में **दो अध्याय** हैं, जिनका नाम '**प्रकाश**' दिया गया है। पहले प्रकाश में **ऋग्वेद** से तथा द्वितीय प्रकाश में **यजुर्वेद** से मन्त्र लिये गये हैं। कुल १०८ मन्त्रों का व्याख्यान है। पहले प्रकाश में ५३ और द्वितीय प्रकाश में ५५ मन्त्रों की व्याख्या है।

विक्रमी संवत् १९३२, मिति चैत्र शुक्ला १०, गुरुवार के दिन महर्षि ने इस ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ किया था। महर्षि के एक पत्र (श्री गोपालराव हरि देशमुख को संवत् १९३२, चैत्र बदी ९, शनिवार को लिखे) से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे **इस पुस्तक के चार अध्याय और बनाना चाहते थे।** सम्भवत: इनमें सभी वेदों से मन्त्र लेते, परन्तु किसी कारणवश यह ग्रन्थ अपूर्ण रहा।

पुस्तक में मूल मन्त्रों के **अर्थ और व्याख्या हिन्दी भाषा** में है।

(सम्पादक)

ओ३म्

अथार्याभिविनयोपक्रमणिकाविचारः

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान्॥ १॥
चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥ २॥
[दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुद्रा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रलसितगुणा वेदशरणा-
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः॥ ३॥]
बहुभिः प्रार्थितः सम्यग् ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना।
हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः॥ ४॥
वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया।
क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति॥ ५॥
स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः।
विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धनः॥ ६॥
विमलं सुखदं सततं सुहितं जगति प्रततं तदु वेदगतम्।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी स नरोऽस्ति सदेश्वरभागधिकः॥ ७॥
विशेषभागीह वृणोति यो हितं नरः परात्मानमतीव मानतः।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः॥ ८॥

व्याख्यान—जो परमात्मा, सबका आत्मा, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्याय करने वाला, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्टदेव है, वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे!

यह काम हमारा आप ही सिद्ध करनेवाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे॥ १॥

संवत् १९३२ मिती चैत्र सुदी १०, गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ हमने किया॥ २॥

दयानन्द सरस्वती स्वामी का नाम इस श्लोक से निकलता है॥ ३॥

बहुत सज्जन लोग, सबके हितकारक, धर्मात्मा, विद्वान्, विचारशील जनों ने मुझसे प्रीति से कहा तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेमभक्ति यथावत् हो, इसलिए इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है॥ ४॥

इस ग्रन्थ में केवल चार वेदों के और ब्राह्मणग्रन्थों के[1] मूलमन्त्रों का प्राकृतभाषा में व्याख्यान किया है, जिससे सब लोगों को सुख से बोध हो और ब्रह्म का ज्ञान यथार्थ हो॥ ४॥

इस ग्रन्थ में परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना तथा धर्मादि विषय वर्णन किया है परन्तु मूलसंहिता मन्त्र और ब्राह्मण प्रमाण से ही, सब को सुख बढ़ाने वाला यह विषय है॥ ५॥

जो ब्रह्म विमल, सुखकारक, पूर्णकाम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है, जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है, वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सबसे सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है॥ ७॥

जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मता, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है, वही जन अतीव भाग्यशाली है, क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्यविद्या से सम्पूर्ण दु:ख से छूटके परमानन्द परमात्मा का नित्य संगरूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है, फिर कभी जन्म मरण आदि दु:ख सागर को प्राप्त नहीं होता, परन्तु जो विषयलम्पट, विचाररहित, विद्या, धर्म, जितेन्द्रियता, सत्सङ्गरहित, छल, कपट, अभिमान, दुराग्रहादि दुष्टतायुक्त है, सो वह मोक्ष-सुख को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है॥ ८॥

---

१. महर्षि दयानन्द जी ने गोपालराव हरिदेशमुख को पत्र लिखा था—आर्याभिविनय के दो अध्याय बन गये हैं, और चार आगे बनने हैं।

और वह मनुष्य जन्म-मरण, ज्वरादि पीड़ाओं से पीड़ित होके सदा दु:खसागर में ही पड़ा रहता है।

इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों, किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर होके इस लोक (संसार-व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इनकी सिद्धि यथावत् करें, यही सब मनुष्यों की कृतकृत्यता है।

इस आर्याभिविनय ग्रन्थ में मुख्यता से वेदमन्त्रों का परमेश्वर-सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया है। दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता, इससे व्यवहार-विद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ—ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायेंगे—जैसे (**तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुरित्यादि**[1] य० संहिता प्रमाण, **इन्द्रं मित्रं वरुणमित्यादि**[2] ऋ० सं० प्र०, **बृहस्पतिर्वै ब्रह्म**[3], **गणपतिर्वै ब्रह्म, प्राणो वै ब्रह्म**[4], **आपो वै ब्रह्म, ब्रह्म ह्यग्निरित्यादि**[5], शतपथ, ऐतरेय ब्राह्मणादि प्रमाण और **महान्तमेवात्मानमित्यादि**[6]) निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है तथा **मुखादग्निरजायतेत्यादि**[7], य० सं० प्र०, **वायोरग्निरित्यादि**[8] ब्राह्मण प्र० तथा **अग्निरग्रणीर्भवती-त्यादि**[9] निरुक्त प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूपगुणवाला दाह-प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि, वह लिया जाता है, इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायेंगे, जिससे सायणादिकृत भाष्य-दोष और उनके अनुसार अंग्रेजी कृतार्थदोषरूप वेदों के कलङ्क निवृत्त हो जाएँगे और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से, वेदों का महत्त्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत्

---

१. यजुर्वेद ३२.१॥
२. ऋग्वेद १.१६४.४६॥
३. ऐतरेय ब्राह्मण १.१३, शतपथ ३.१.४.१५॥
४. शतपथ १४.६.१०.२॥
५. शतपथ १.५.१.११॥
६. निरुक्त १६.१॥
८. यजुर्वेद ३१.१२॥
८. तैत्तिरीयोपनिषद् ३.१॥
९. निरुक्त ७.१४॥

सबकी प्रीति होगी।

इस ग्रन्थ से तो मनुष्यों को केवल ईश्वर का स्वरूपज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जिससे नास्तिक और पाखण्डमतादि अधर्म में मनुष्य लोग न फँसें। किञ्च सब प्रकार से मनुष्य अत्युत्तम हों और सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा सब मनुष्यों पर हो, जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़के श्रेष्ठता को स्वीकार करें, यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है, सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा।

॥ इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्णा ॥

ओ३म्

तत्सत्परब्रह्मणे नमः

अथार्याभिविनयप्रारम्भः

ओं शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॒ शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः॥ १ ॥

*ऋ० अ० १। अ० ६। व० १८। मं० ४॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण! हे अज, निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्! हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार! हे सनातन, सर्वमङ्गलमय, सर्वस्वामिन्! हे करुणाकरास्मत्पितः, परमसहायक! हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक! हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक! हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक! हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद! हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद! हे विश्वासविलासक! हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद! हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक! हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक! हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक! हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक! धर्मसुप्रापक! हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद! हे सन्ततिपालक, धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक! हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद! हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताडन, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक! हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्! हे जगदानन्दक, परमेश्वर, व्यापक, सूक्ष्माच्छेद्य! हे अजरामृताभयनिर्बन्धानादे! हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य! हे मङ्गलप्रदेश्वर! आप सर्वथा सबके निश्चित मित्र हो, हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो। हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर! आप वरुण, अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, सो आप हमको परमसुखदायक

* यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत् जान लेना क्योंकि आगे केवल अङ्क संख्या लिखी जायगी। ऋ० १।६।१८।९॥ इनसे अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र जान लेना। (दयानन्द सरस्वती)

हो। हे पक्षपातरहित, धर्मन्यायकारिन्! आप अर्यमा (यमराज) हो, हमारे लिए न्याययुक्त सुख देनेवाले आप ही हो। हे परमैश्वर्यवन्, इन्द्रेश्वर! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिए। हे महाविद्य वाचोऽधिपते! बृहस्पते, परमात्मन्! हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो। हे सर्वव्यापक, अनन्त-पराक्रमेश्वर, विष्णो! आप हमको अनन्त सुख देओ, जो कुछ माँगेंगे सो आपसे ही हम लोग माँगेंगे, सब सुखों का देनेवाला आपके विना कोई नहीं है। सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हमको सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है॥ १॥

मूलमन्त्र स्तुति विषयः

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम्॥ २॥ ऋ० १।१।१।१

व्याख्यान—हे वन्द्येश्वराग्ने! आप ज्ञानस्वरूप हो, आपकी मैं स्तुति करता हूँ। सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है—हे मनुष्यो! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति-प्रार्थना और उपासनादि करो। जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्त्तमान करना, वैसे सबके पिता और परम गुरु ईश्वर ने हमको अपनी कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है, जिससे हमको व्यवहार-ज्ञान और परमार्थ-ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सबका आदिकारण ईश्वर है, वैसे परमविद्या वेद का भी आदिकारण ईश्वर है।

हे सर्वहितोपकारक! आप ''**पुरोहितम्**'' सब जगत् के हितसाधक हो। हे यज्ञदेव! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञान-यज्ञादि के लिए कमनीयतम हो। ''**ऋत्विजम्**'' सब ऋतु—वसन्त आदि के रचक, अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिए, उस समय वैसे सुख के सम्पादक आप ही हो। ''**होतारम्**'' सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देनेवाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करनेवाले हो। ''**रत्नधातमम्**'' रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण, रचन करनेवाले तथा अपने

सेवकों के लिए रत्नों के धारण करनेवाले एक आप ही हो। हे सर्वशक्तिमन्! परमात्मन्! इसलिए मैं वारम्वार आपकी स्तुति करता हूँ, इसको आप स्वीकार कीजिए, जिससे हम लोग आपके कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें॥ २॥

मूल प्रार्थना

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे।
य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम्॥ ३॥ ऋ० १।१।१।३

व्याख्यान—हे महादातः, ईश्वराग्ने! आपकी कृपा से स्तुति करनेवाला मनुष्य ''**रयिम्**'' उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन ''**पोषमेव**'' महापुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला तथा जिससे विद्या, शौर्य, धैर्य, चातुर्य, बल, पराक्रमयुक्त और दृढ़ाङ्ग, धर्मात्मा, न्याययुक्त, अत्यन्त वीर पुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण-रत्नादि तथा चक्रवर्त्ती राज्य और विज्ञानस्वरूप धन को मैं प्राप्त होऊँ तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूँ॥ ३॥

मूल स्तुति

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त।
स दे॒वाँ एह व॑क्षति॥ ४॥ ऋ० १।१।१।२

व्याख्यान—हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वराग्ने! ''**पूर्वेभिः**'' विद्या पढ़े हुए प्राचीन ''**ऋषिभिः**'' मन्त्रार्थ देखनेवाले विद्वान् तथा ''**नूतनैः**'' वेदार्थ पढ़नेवाले नवीन ब्रह्मचारियों से ''**ईड्यः**'' स्तुति के योग्य ''**उत**'' और जो हम लोग विद्वान् वा मूर्ख हैं, उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो, सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिए दिव्य गुण, अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आप ही सबके इष्टदेव हो॥ ४॥

मूल स्तुति

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः।
दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत्॥ ५॥ ऋ० १।१।१।५

व्याख्यान—हे सर्वदृक्! सबको देखनेवाले ''**क्रतुः**'' सब जगत् के जनक ''**सत्यः**'' अविनाशी, अर्थात्, कभी जिसका नाश नहीं होता, ''**चित्रश्रवस्तमः**'' आश्चर्यश्रवणादि, आश्चर्यगुण, आश्चर्यशक्ति, आश्चर्य-स्वरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो, जिन आपके तुल्य वा आपसे बड़ा कोई नहीं है। हे जगदीश! ''**देवेभिः**'' दिव्य गुणों के सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों, सब जगत् में भी प्रकाशित हों, जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो। वह राज्य आपका ही है, हम तो केवल आपके पुत्र तथा भृत्यवत् हैं॥५॥

मूल प्रार्थना

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥ ऋ० १।१।२।१

व्याख्यान—हे ''**अङ्ग**'' मित्र! जो आपको आत्मादि दान करता है, उसको ''**भद्रम्**'' व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो। हे ''**अङ्गिरः**'' प्राणप्रिय! यह आपका सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना, यही आपका स्वभाव हमको अत्यन्त सुखकारक है, आप मुझको ऐहिक और पारमार्थिक—इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिए, जिससे सब दुःख दूर हों। हमको सदा सुख ही रहे॥६॥

मूल स्तुति

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥७॥ ऋ० १।१।३।१

व्याख्यान—हे अनन्तबल परेश, वायो! दर्शनीय! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो। हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं, वे आपके लिए ''**अरङ्कृताः**'' अलङ्कृत, अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं वे सब आपके समर्पण किये गये हैं, उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो)। हम दीनों की पुकार सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज़ समर्पण करता है, उसपर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हमपर प्रसन्न होओ॥७॥

मूल प्रार्थना

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥८॥ ऋ० १।१।६।४

व्याख्यान—हे वाक्पते! सर्वविद्यामय! हमको आपकी कृपा से ''**सरस्वती**'' सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो ''**वाजेभिः**'' तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्त्तमान ''**वाजिनीवती**'' सर्वोत्तम क्रियाविज्ञानयुक्त ''**पावका**'' पवित्रस्वरूप और पवित्र करनेवाली सदैव सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से ''**धियावसुः**'' परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान निधिस्वरूप यह वाणी ''**यज्ञं वष्टु**'' सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों॥८॥

मूल स्तुति

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते॥९॥ ऋ० १।१।९।२

व्याख्यान—हे परात्पर परमात्मन्! आप ''**पुरूतमम्**'' अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के ''**ईशानम्**'' स्वामी और उत्पादक हो, ''**वार्य्याणाम्**'', वर, वरणीय परमानन्दमोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो और ''**सोमे**'' उत्पत्तिस्थान संसार आपसे उत्पन्न होने से प्रीतिपूर्वक ''**इन्द्रम्**'' परमैश्वर्यवान् आपको (अभिप्रगायत*) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें, जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य बढ़ता जाय और हम परमानन्द को प्राप्त हों॥९॥

मूल प्रार्थना

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥१०॥
ऋ० १।६।१५।५

व्याख्यान—हे सर्वाधिस्वामिन्! आप ही चर और अचर जगत् के

* इस शब्द की अनुवृत्ति मन्त्र १.१.९.१ से आई है। (दयानन्द सरस्वती)

''**ईशानम्**'' रचनेवाले हो, ''**धियंजिन्वम्**'' सर्वविद्यामय, विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले, सबको तृप्त करनेवाले प्रीणनीयस्वरूप ''**पूषा**'' सबके पोषक हो, उन आपका हम ''**नः, अवसे**'' अपनी रक्षा के लिए ''**हूमहे**'' आह्वान करते हैं। '**यथा**' जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिए ''**अदब्धः रक्षिता**'' निरालस रक्षा करने में तत्पर हो, वैसे ही कृपा करके आप ''**स्वस्तये**'' हमारी स्वस्थता के लिए ''**पायुः**'' निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो, आपसे पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों॥ १०॥

मूल स्तुति

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः॥ ११॥ ऋ० १।२।७।१

व्याख्यान—हे ''**देवाः**'' विद्वानो! ''**विष्णुः**'' सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिए, पृथिवी से लेके सप्तविध ''**धामभिः**'' धाम, अर्थात् ऊँचे-नीचे सात प्रकार के लोकों को बनाया तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया, उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने ''**यतः**'' जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है, ''**अतः (सामर्थ्यात्)**'' उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे। हे विद्वानो! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो। कैसा है वह विष्णु? जिसने इस सब जगत् को ''**विचक्रमे**'' विविध प्रकार से रचा है, उसकी नित्य भक्ति करो॥ ११॥

मूल प्रार्थना

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य॥ १२॥

ऋ० १।३।१०।५

व्याख्यान—हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर! राक्षस, हिंसाशील, दुष्टस्वभाव देहधारियों से ''**नः**'' हमारी ''**पाहि**'' पालना और रक्षा करो। ''**धूर्त्तेरराव्णः**'' कृपण, जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो। जो हमको मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज, बलवत्तम! उन सबसे हमारी रक्षा करो॥ १२॥

मूल स्तुति

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्॥ १३॥

ऋ० १।४।१४।२

व्याख्यान—हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! आकाशलोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण-तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के ''**अवसे**'' सम्यक् रक्षण के लिए ''**त्वम्**'' आप सावधान हो रहे हो, इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं, किञ्च ''**दिवम्**'' परमाकाश ''**भूमिम्**'' भूमि तथा ''**स्वः**'' सुखविशेष मध्यस्थलोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रचके यथावत् धारण कर रहे हो, ''**परिभूः एषि**'' सब के ऊपर वर्त्तमान और सबको प्राप्त हो रहे हो, ''**आ दिवम्**'' द्योतनात्मक सूर्यादि लोक ''**अपः**'' अन्तरिक्षलोक और जल इन सबके प्रतिमान-(परिमाण)-कर्त्ता आप ही हो तथा आप अपरिमेय हो कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिए॥ १३॥

मूल प्रार्थना

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥ १४॥

ऋ० १।४।१०।३

व्याख्यान—हे यथायोग्य सबको जाननेवाले ईश्वर! आप ''**आर्यान्**'' विद्या, धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो, ''**ये च दस्यवः**'' और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादि-दोषयुक्त, उत्तम कर्म में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्याविरोधी, अनार्य मनुष्य ''**बर्हिष्मते**'' सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं—इन सब दुष्टों को आप ''**रन्धय**'' (समूलान् विनाशय) मूलसहित नष्ट कर दीजिए और ''**शासदव्रतान्**'' ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्मानुष्ठानव्रतरहित, वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों को यथायोग्य शासन करो

(शीघ्र उनपर दण्ड निपातन करो), जिससे वे भी शिक्षायुक्त होके शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त हो जाए, किंवा हमारे वश में ही रहें, ''**शाकी**'' तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करनेवाले हो, आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो। मैं भी ''**सधमादेषु**'' उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ ''**विश्ववेत्ता ते**'' तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की ''**चाकन**'' कामना करता हूँ, सो आप पूरी करें॥ १४॥

मूल स्तुति

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥ १५ ॥

ऋ० १।४।१४।४

व्याख्यान—हे परमैश्वर्ययुक्तेश्वर! आप इन्द्र हो। हे मनुष्यो! 'जिस परमात्मा का **अन्त**—इतना यह है', न हो, उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता तथा दिन अर्थात् सूर्यादिलोक—सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी मध्य=निकृष्टलोक—ये कोई उसके आदि-अन्त को नहीं पाते, क्योंकि ''**अनुव्यचः**'' वह सबके बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है तथा ''**न सिन्धवः**'' अन्तरिक्ष में जो दिव्य जल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते ''**नोत स्ववृष्टिं मदे**'' वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली-गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते।[१] हे परमात्मन्! आपका पार कौन पा सके, क्योंकि ''**एकः**'' एक असहाय अपने से भिन्न स्वसामर्थ्य से ही ''**विश्वम्**'' सब जगत् को ''**आनुषक्**'' आनुषक्त, अर्थात् उसमें व्याप्त होते और ''**चकृषे**'' (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है, फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें तथा ''**अन्यत्**'' आप जगत् रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो, किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और लय यथाकाल में करते हो, इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है॥ १५॥

१. जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करे, वैसे मेघ का भी दृष्टान्त जानना। (दयानन्द सरस्वती)

मूल प्रार्थना

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वां चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥ १६ ॥

ऋ० १।३।१०।४॥

व्याख्यान—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म आप ''**ऊर्ध्वः**'' सबसे उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो तथा ऊर्ध्वदेश में हमारी रक्षा करो। हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर! हमको ''**केतुना**'' विज्ञान, अर्थात् विविध विद्यादान देके ''**अंहसः**'' अविद्यादि महापाप से ''**निपाहि**''नितरां पाहि—सदैव अलग रक्खो तथा ''**विश्वम्**'' इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो। हे सत्यमित्र न्यायकारिन्! जो कोई प्राणी ''**अत्रिणम्**'' हमसे शत्रुता करता है उसको और काम-क्रोधादि शत्रुओं को आप ''**सन्दह**'' सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ), ''**कृधी न ऊर्ध्वान्**'' हे कृपानिधे! हमको विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेशसुख-सम्पादनादि गुणों में सब नरदेहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा ''**चरथाय, जीवसे**'' सबसे अधिक आनन्द, भोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना-आना), आरोग्यदेह, शुद्ध मानसबल और विज्ञान इत्यादि के लिए हमको उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो, ''**विदा**'' विद्यादि उत्तमोत्तम धन ''**देवेषु**'' विद्वानों के बीच में प्राप्त करो, अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हमको रक्खो॥ १६॥

मूल स्तुति

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥ १७॥

ऋ० १।६।१६।१०

व्याख्यान—हे त्रैकाल्याबाध्येश्वर! ''**अदितिर्द्यौः**'' आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशरूप हो। ''**अदितिरन्तरिक्षम्**'' अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सबके अधिष्ठाता हो ''**अदितिर् माता**'' आप प्राप्त-मोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाश-रहित) सुख देने और अत्यन्त मान करनेवाले

हो, ''**स पिता**'' सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और ''**स पुत्रः**'' सो ईश्वर आप मुमुक्षु, धर्मात्मा और विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करनेवाले हो। ''**विश्वे देवाः अदितिः**'' सब देव दिव्यगुण—विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करनेवाले अविनाशी परमात्मा आप ही हैं ''**पञ्चजना अदितिः**'' पाँच प्राण, जो जगत् के जीवनहेतु, वे भी आपके रचे और आपके नाम भी हैं ''**जातमदितिः**'' एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं, और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (विनाशभूत) भी हो जाते हैं ''**अदितिर्जनित्वम्**'' वे ही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् के ''**जनित्वम्**'' जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं[१] ॥ १७ ॥

मूल प्रार्थना

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १८ ॥ ऋ० १।६।१७।१

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर! आप हमको ''**ऋजुनीती**'' सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजाओं की नीति को ''**नयतु**'' कृपादृष्टि से प्राप्त करो। आप ''**वरुणः**'' सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ तथा **[मित्रः]** सबके मित्र शत्रुतारहित हो, हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिए तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो, हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति देके साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिए तथा आप ''**अर्यमा**'' (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़के न्याय में वर्त्तमान हो, सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करनेवाले हो सो हमको भी आप तादृश करें, जिससे ''**देवैः**, **सजोषाः**'' आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आपमें रमण और आपका सेवन करनेवाले हों! हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहाय करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ॥ १८ ॥

१. ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं परन्तु यहाँ ईश्वराभिप्रेत से ही अर्थ किया, सो प्रमाण जानना चाहिये। (दयानन्द सरस्वती)

मूल स्तुति

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १९ ॥ ऋ० १।६।१९।५

व्याख्यान—हे ''सोम'' राजन्! सत्पते! परमेश्वर! तुम 'सोम, सर्वसवनकर्त्ता (सबका सार निकालनेहारे), प्राप्यस्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करनेवाले हो, तुम्हीं सबके राजा ''उत'' और ''**वृत्रहा**'' मेघ के रचक, धारक और मारक हो, भद्रस्वरूप, भद्र करनेवाले और ''**क्रतुः**'' सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥ १९ ॥

मूल प्रार्थना

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ २० ॥ ऋ० १।६।२०।३

व्याख्यान—हे सोम! राजन्नीश्वर! तुम ''**अघायतः**'' जो कोई प्राणी हममें पापी और पाप करने की इच्छा करनेवाले हों ''**विश्वतः**'' उन सब प्राणियों से हमारी ''**रक्ष**'' रक्षा करो, जिसके आप सगे मित्र हो ''**न, रिष्येत्**'' वह कभी विनष्ट नहीं होता, किन्तु हमको आपके सहाय से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा, जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो, उसको दुःख क्योंकर हो ॥ २० ॥

मूल स्तुति

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २१ ॥ ऋ० १।२।७।२०

व्याख्यान—हे विद्वान् और मुमुक्षु जीवो! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सबके जानने योग्य, जिसको प्राप्त होके पूर्णानन्द में रहते हैं फिर वहाँ से कभी दुःख में नहीं गिरते, उस पद को ''**सूरयः**'' धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सबके हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है। किस दृष्टान्त से कि जैसे आकाश में ''**चक्षुः**'' नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है, वैसे ही ''**दिवीव**, **चक्षुराततम्**'' परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण, एकरस भर रहा है। वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है, इसी

की प्राप्ति होने से जीव सब दु:खों से छूटता है, अन्यथा जीव को कभी परमसुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिए॥ २१ ॥

मूल प्रार्थना

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥ २२ ॥

ऋ० १।३।१८।२

व्याख्यान—(**परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति**) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि, हे जीवो! ''**वः**'' (युष्माकम्) तुम्हारे **आयुध,** अर्थात् शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक), धनुष-बाण, असि (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र **स्थिर** और ''**वीळू**'' दृढ़ हों । किस प्रयोजन के लिए? ''**पराणुदे**'' तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिए, जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दु:ख न दे सकें और ''**उत, प्रतिष्कभे**'' शत्रुओं के वेग को थामने के लिए ''**युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी**'' तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो, जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो, परन्तु ''**मा मर्त्यस्य मायिनः**'' जो अन्यायकारी मनुष्य है, उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो, उसका पराजय ही सदा हो। हे बन्धुवर्गो! आओ, अपने सब मिलके सब दु:खों का विनाश और विजय के लिए ईश्वर को प्रसन्न करें, जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें॥ २२॥

मूल स्तुति

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ २३ ॥ ऋ० १।२।७।४

व्याख्यान—हे जीवो! ''**विष्णोः**'' व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो। (प्रश्न)—किस हेतु से हम लोग जानें कि ये व्यापक विष्णु के कर्म हैं? (उत्तर)—''**यतो व्रतानि पस्पशे**'' जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्य-भाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को सुशरीरधारी होके समर्थ

हुए हैं, यह काम उसी के सामर्थ्य से है, क्योंकि ''**इन्द्रस्य, युज्यः, सखा**'' इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है, अन्य कोई नहीं, क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता, इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिए॥ २३॥

मूल प्रार्थना

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम्॥ २४॥

ऋ० ५।३।२१।५

व्याख्यान—हे ''**मघवन्**'' परमैश्वर्यवन्! इन्द्र! परमात्मन्! ''**अमित्रान्**'' हमारे सब शत्रुओं को ''**पराणुदस्व**'' परास्त कर दो। हे दातः! ''**सुवेदा, नो, वसू, कृधि**'' ''**अस्माकं बोध्यविता**'' हमारे लिए सब पृथिवी के धन सुलभ (सुख से प्राप्त) कर। ''**महाधने**'' युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के ''**अविता**'' रक्षक ''**वृधः**'' वर्धक ''**भव**'' आप ही हो तथा ''**बोधि**'' हमको अपने ही जानो। हे भगवन्! जब आप ही हमारे योद्धारक्षक होंगे तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा, इसमें सन्देह नहीं॥ २४॥

मूल प्रार्थना

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥ २५ ॥

ऋ० ५।३।२८।२

व्याख्यान—हे ईश्वर! ''**भगः**'' आप और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य ''**शं नः**'' हमारे लिए सुखकारक हो और ''**शमु, नः, शंसो अस्तु**'' आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो। ''**पुरन्धिः, शमु, सन्तु, रायः**'' संसार के धारण करनेवाले आप तथा वायु, प्राण और सब धन आपकी कृपा से आनन्दायक हों। ''**शन्नः, सत्यस्य सुयमस्य शंसः**'' सत्य, यथार्थ धर्म, सुसंयम और जितेन्द्रियादिलक्षणयुक्त की जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिए हो। ''**शं नो, अर्यमा**'' न्यायकारी आप ''**पुरुजातः**''

अनन्तसामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ॥ २५॥

मूल स्तुति

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य।

अग्ने रथीरध्वराणाम्॥ २६॥ ऋ० ५।८।३५।२

व्याख्यान—हे ''**अग्ने**'' सर्वज्ञ! तू ही सर्वत्र ''**प्रशस्यः**'' स्तुति करने के योग्य है, अन्य कोई नहीं। ''**विदथेषु**'' यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो। जो तुम्हारी स्तुति को छोड़के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है। ''**सहन्त्य**'' शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो। ''**रथीरध्वराणाम्**'' अध्वरों, अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो। हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतनेवाले हो, इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता॥ २६॥

मूल प्रार्थना

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।

शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ २७॥

ऋ० ५।३।२७।५

व्याख्यान—हे भगवन्! ''**तन्न, इन्द्रः**'' सूर्य, ''**वरुणः**'' चन्द्रमा, ''**मित्रः**'' वायु, ''**अग्निः**'' अग्नि, ''**आपः**'' जल, ''**ओषधीः**'' वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आपकी आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा ''**जुषन्त**'' सेवन करें। हे रक्षक! ''**मरुतामुपस्थे**'' प्राणादि के सुसमीप बैठे हुए हम आपकी कृपा से ''**शर्मन्त्स्याम**'' सुखयुक्त सदा रहें, ''**स्वस्तिभिः**'' सब प्रकार के रक्षणों से ''**यूयं पात**'' (आदरार्थं बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो, किसी प्रकार से हमारी हानि न हो॥ २७॥

मूल स्तुति

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा।

इन्द्र चोष्कूयसे वसु॥ २८॥ ऋ० ५।८।१७।१

व्याख्यान—हे ईश्वर! ''**ऋषिः**'' सर्वज्ञ ''**पूर्वजाः**'' और सबके पूर्वजनक '' **एकः**'' एक, अद्वितीय ''**ईशानः**'' ईशन-कर्त्ता, (अर्थात् ईश्वरता करनेहारे) तथा सबसे बड़े प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहनेवाले ''**ओजसा**'' अनन्त-पराक्रम से युक्त हो। हे ''**इन्द्र**'' महाराजाधिराज! ''**चोष्कूयसे वसु**'' सब धन के दाता, शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो। आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो॥ २८॥

मूल प्रार्थना

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत।

गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः

सु ऊतयो व ऊतयः॥ २९॥ ऋ० ६।४।९।२

व्याख्यान—हे भगवन्! ''**रक्षस्विने भद्रं, नेह**'' पापी, हिंसक, दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना। ''**नावयै**'' धर्म से विपरीत चलनेवाले को सुख कभी मत हो ''**नोपया उत**'' तथा अधर्मी के समीप रहनेवाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो। ऐसी प्रार्थना आपसे हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिए, नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि ही न करेगा, किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिए तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियाँ, दुग्ध देनेवाली गौ आदि, वीरपुत्र और शूरवीर भृत्य ''**श्रवस्यते**'' विद्या, विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्यजन तथा इनके लिए ''**अनेहसः**'' निष्पाप, निरुपद्रव, स्थिर, दृढ़ सुख हो ''**सु ऊतयो व ऊतयः**'' (वः युष्माकं, बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर! आप सर्वरक्षण, अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं के रक्षक हैं। जिन पर आप रक्षक हो उनको सदैव ''**भद्रम्**'' कल्याण, (परमसुख) प्राप्त होता है, अन्य को नहीं॥ २९॥

मूल स्तुति

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः।

स्याम ते सुमतावपि॥ ३०॥ ऋ० ६।३।४०।४

व्याख्यान—हे परमात्मन्! आप ''**वसुः**'' सबको अपने में बसानेवाले और सबमें आप बसनेवाले हो तथा ''**वसुपतिः**'' पृथिव्यादि वासहेतुभूतों के पति हो। ''**कमसि**'' हे अग्ने! विज्ञानानन्दस्वप्रकाशस्वरूप! आप ही सबके सुखकारक और सुखस्वरूप हो तथा ''**विभावसुः**'' सत्यस्वप्रकाशैकधनमय हो। हे भगवन्! ऐसे जो आप, उन ''**ते**'' आपकी ''**सुमतौ**''

अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों॥ ३०॥

मूल प्रार्थना

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥ ३१॥

ऋ० १।७।६।१

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा सब भुवनों का स्वामी ''**कम्**'' सबका सुखदाता और ''**अभिश्रीः**'' सबका निधि (शोभा-कारक) है। ''**वैश्वानरो यतते सूर्येण**'' संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है, अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं। ''**इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे**'' इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है, अर्थात् उसने रचा है। ''**वैश्वानरस्य सुमतौ, स्याम**'' उस वैश्वानर परमेश्वर की सुमति, अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट) ज्ञान में हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञानवाले हों। हे महाराजाधिराजेश्वर! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो॥ ३१॥

मूल स्तुति

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ३२॥

ऋ० १।७।१०।५

व्याख्यान—हे अनन्तबल! ''**न यस्य**'' जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का ''**देवाः**'' इन्द्रिय, ''**देवताः**'' विद्वान्, सूर्यादि तथा बुद्ध्यादि, ''**न मर्ताः**'' साधारण मनुष्य, ''**आपश्चन**'' आप, प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब, ''**अन्तम्**'' पार कभी नहीं पा सकते, किन्तु ''**प्ररिक्वा**'' प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके अतिरिक्त (इनसे विलक्षण), भिन्न हो परिपूर्ण हो रहा है। सो ''**मरुत्वान्**'' अत्यन्त बलवान् ''**इन्द्रः**'' परमात्मा ''**त्वक्षसा**'' शत्रुओं के बल का छेदक, बल से ''**क्ष्मः**'' पृथिवी को ''**दिवश्च**'' स्वर्ग को धारण करता है, सो ''**इन्द्रः**'' परमात्मा ''**ऊती**'' हमारी रक्षा के लिए ''**भवतु**'' तत्पर हो॥ ३२॥

मूल प्रार्थना

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ ३३॥

ऋ० १।७।७।१

व्याख्यान—हे ''**जातवेदः**'' परब्रह्मन्! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जाननेवाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो। जो विद्वानों से ज्ञात सबमें विद्यमान जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो, इससे आपका नाम जातवेद है उन आपके लिए ''**वयम्, सोमं, सुनवाम**'' जितने सोम प्रिय-गुणविशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब आपके ही लिये हैं, सो आप हे कृपालो! ''**अरातीयतः**'' दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके ''**वेदः**'' धनैश्वर्यादि का ''**निदहाति**'' नित्य दहन करो, जिससे वह दुष्टता को छोड़के श्रेष्ठता को स्वीकार करे सो ''**नः**'' हमको ''**दुर्गाणि, विश्वा**'' सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से ''**पर्षदति**'' पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो। ''**नावेव, सिन्धुम्**'' जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र से पार होने के लिए नौका होती है ''**दुरितात्यग्निः**'' वैसे ही हमको सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में भी परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो॥ ३३॥

मूल स्तुति

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ३४॥

ऋ० १।७।१०।२

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन्! आप ''**वज्रभृत्**'' अच्छेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक, दुष्ट-विनाशक जो न्याय उसको धारण कर रहे हो, **प्राणो वै वज्रः** इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है। अतएव ''**दस्युहा**'' दुष्ट, पापी लोगों का हनन करनेवाले हो। ''**भीमः**'' आपकी न्याय आज्ञा को छोड़नेवालों पर भयङ्कर भय देनेवाले हो। ''**सहस्रचेताः**'' सहस्रों विज्ञानादि गुणवाले आप ही हो। ''**शतनीथः**'' सैकड़ों=असंख्यात पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले हो। ''**ऋभ्वा**'' अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाशवाले हो और सबके प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबलवाले हो। ''**न,**

चम्रीषः'' किसी की चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो। ''**शवसा**'' स्वबल से आप ''**पाञ्चजन्यः**'' पाँच प्राणों के जनक हो। ''**मरुत्वान्**'' सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो, सो आप इन्द्र हमारी रक्षा के लिए प्रवृत्त हों, जिससे हमारा कोई काम बिगड़े नहीं॥ ३४॥

मूल प्रार्थना

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।

स्तवाम त्वा स्वाध्यः॥ ३५॥ ऋ० १।१।३१।४

व्याख्यान—हे ''**शतक्रतो**'' अनन्तक्रियेश्वर! आप असंख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो तथा अनन्तक्रियाबलयुक्त हो, सो आप ''**गोभिरश्वैः**'' गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विमानादियुक्त) तथा 'अश्व' अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य से ''**सेमं, नः, काममापृण**'' हमारे काम को परिपूर्ण करो। फिर हम भी ''**स्तवाम, त्वा, स्वाध्यः**'' सुबुद्धियुक्त होके उत्तम प्रकार से आपका स्तवन (स्तुति) करें। हमको दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। जो आपको छोड़के दूसरे का ध्यान वा याचना करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं॥ ३५॥

मूल स्तुति

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः।

सुमृळीको न आ विश॥ ३६॥ ऋ० १।६।२१।१

व्याख्यान—हे ''**सोम**'' सर्वजगदुत्पादकेश्वर! आपको ''**वचोविदः**'' शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से ''**वर्धयामः**'' सर्वोपरि विराजमान मानते हैं। ''**सुमृळीकः**, **नः आविश**'', क्योंकि हमको सुष्ठु सुख देनेवाले आप ही हो, सो कृपा करके हमको आप आदेश करो, जिससे हम लोग अविद्यान्धकार से छूट और विद्या सूर्य को प्राप्त होके आनन्दित हों॥ ३६॥

मूल प्रार्थना

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।

मर्यइव स्व ओक्ये॥ ३७॥ ऋ० १।६।२१।३

व्याख्यान—हे ''**सोम**'' सोम्य! सौख्यप्रदेश्वर! आप कृपा करके

''**रारन्धि, नो हृदि**'' हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। (दृष्टान्त)—जैसे सूर्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय पशु अपने-अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं* वा जैसे ''**मर्यः**, **इव**, **स्वे, ओक्ये**'' मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिए, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो॥ ३७॥

मूल स्तुति

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः।

सुमित्रः सोम नो भव॥ ३८॥ ऋ० १।६।२१।२

व्याख्यान—हे परमात्मभक्त जीवो! अपना इष्ट जो परमेश्वर, सो ''**गयस्फानः**'' प्रजा, धन, जनपद और स्वराज्य का बढ़ानेवाला है, तथा ''**अमीवहा**'' शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन (विनाश) करनेवाला है। ''**वसुवित्**'' सब पृथिव्यादि वसुओं का जाननेवाला है, अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है, ''**पुष्टिवर्धनः**'' अपने शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि का बढ़ानेवाला है। ''**सुमित्रः**, **सोम**, **नः**, **भव**'' सुष्ठु, यथावत् सबका परममित्र वही है, सो अपने उससे यह माँगें कि हे सोम! सर्वजगदुत्पादक! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हों और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आपसे ही रक्खें॥ ३८॥

मूल प्रार्थना

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।

अप नः शोशुचदघम्॥ ३९॥ ऋ० १।७।५।६

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन्! ''**त्वं, हि**'' तू ही ''**विश्वतः परिभूरसि**'' सब जगत् सब ठिकानों में व्याप्त हो, अतएव आप विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वमुख स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है। हे कृपालो! ''**अप, नः शोशुचदघम्**'' आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय, जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञा-पालन में नित्य

* दृष्टान्त का एकदेश रमणमात्र लेना।

तत्पर रहें॥ ३९॥

मूल स्तुति

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥ ४०॥

ऋ० १।७।३।३

व्याख्यान—हे मनुष्यो! ''**तमीळत**'' उस अग्नि की स्तुति करो। कैसा है वह अग्नि? जो ''**प्रथमम्**'' सब कार्यों से पहले वर्त्तमान और सबका आदिकारण है तथा ''**यज्ञसाधम्**'' सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करनेवाला), सबका जनक है। हे ''**विशः**'' मनुष्यो! उस को ही स्वामी मानकर ''**आरीः**'' प्राप्त होओ, जिसको अपने दीनता से पुकारते, और जिसको विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते और जानते हैं। ''**ऊर्जः पुत्रं भरतम्**'' पृथिव्यादि जगत् रूप अन्न का पुत्र, अर्थात् पालन करनेवाला तथा 'भरत', अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करनेवाला है। ''**सृप्रदानुम्**'' सब जगत् को चलने की शक्ति देनेवाला और ज्ञान का दाता है। उसी को ''**देवाः, अग्निं, धारयन् द्रविणोदाम्**'' देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं। वही सब जगत् को 'द्रविण' अर्थात् निर्वाह के सब अन्न-जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देनेवाला है। उस अग्नि परमात्मा को छोड़के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी चाहिए॥ ४०॥

मूल प्रार्थना

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य वरुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ४१॥

ऋ० १।७।९।२

व्याख्यान—हे मनुष्यो! ''**तमूतयः**'' उसी इन्द्र—परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को ''**ऊतयः**'' अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे। वही ''**शूरसातौ**'' युद्ध में अपने को यथावत् ''**रणयन्**'' रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा ''**तं क्षेमस्य क्षितयः**'' हे शूरवीर मनुष्यो! उसी को क्षेम=कुशलता का ''**त्राम्**'' रक्षक ''**कृण्वत**'' करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो, क्योंकि, ''**सः, विश्वस्य**'' सो करुणामय, सब जगत् पर करुणा करनेवाला ''**एकः**'' एक ही ''**ईशः**'' ईश है, अन्य कोई नहीं। सो परमात्मा ''**मरुत्वान्**'' प्राणवायु, बल, सेनायुक्त ''**नः ऊती** (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो, ईश्वर से रक्षित हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों॥ ४१॥

मूल स्तुति

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥ ४२॥

ऋ० १।७।३।२

व्याख्यान— हे मनुष्यो! सो ही ''**पूर्वया, निविदा**'' आदि, सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त अग्नि ही परमात्मा था, अन्य कोई नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) करता भया। ''**कव्यतायोः**'' सर्वज्ञतादिसामर्थ्य से ही सत्यविद्या-युक्त वेदों की तथा ''**मनूनाम्**'' मननशीलवाले मनुष्यों की तथा अन्य पशु-वृक्षादि की ''**प्रजाः**'' प्रजा को ''**अजनयत्**'' उत्पन्न किया—परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार चलने के लिए, परन्तु मननशीलवाले मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। ''**विवस्वता चक्षसा**'' सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला, बल से स्वर्ग (सुखविशेष), सब लोक ''**अपः**'' अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यमलोक और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर देव है उसी ''**द्रविणोदाम्**'' विज्ञानादि धन देनेवाले को ही ''**देवाः**'' विद्वान् लोग ''**अग्निम्**'' अग्नि ''**धारयन्**'' जानते हैं। हम लोग उसी को ही भजें॥ ४२॥

मूल प्रार्थना

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज॥ ४३॥

ऋ० १।७।१४।४

व्याख्यान—हे इन्द्र—परमात्मन्! ''**त्वया युजा, वयं, जयेम**'' आपके साथ वर्त्तमान, आपके सहाय से हम लोग दुष्ट शत्रुओं को जीतें। कैसा वह शत्रु, कि ''**आवृतम्**'' हमारे बल से घिरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर!

''**भरे भरे अस्माकमंशमुदव**'' युद्ध-युद्ध (प्रत्येक युद्ध) में हमारे अंश (बल), सेना का ''**उदव**'', उत्कृष्ट रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को प्राप्त न हों, किन्तु जिनको आपका सहाय है, उनका सर्वत्र विजय ही होता है। हे ''**इन्द्र, मघवन्**'' महाधनेश्वर! ''**शत्रूणां, वृष्ण्या**'' हमारे शत्रुओं के (वीर्य) पराक्रमादि को ''**प्ररुज**'' प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे। ''**अस्मभ्यं, वरिवः सुगं, कृधि**'' हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को ''**सुगम्**'' सुख से प्राप्त कर, अर्थात् आपकी करुणा कटाक्ष से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को ही प्राप्त हो॥ ४३॥

मूल स्तुति

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे॥ ४४॥

ऋ० १।७।१२।५

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो सब जगत् (स्थावर), जड़, अप्राणी का और ''**प्राणतः**'' चेतनावाले जगत् का ''**पतिः**'' अधिष्ठाता और पालक है तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और ''**ब्रह्मणे, गाः, अविन्दत्**'' जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म, अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है और जो ''**इन्द्रः**'' परमैश्वर्यवान् परमात्मा डाकुओं को ''**अधरान्**'' नीचे गिराता है तथा उनको मार ही डालता है। ''**मरुत्वन्तं, सख्याय, हवामहे**'' आओ मित्रो! भाई लोगो! अपने सब सम्प्रीति से मिलके मरुत्वान्, अर्थात् परमानन्त बलवाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिए अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद होके पुकारें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं॥ ४४॥

मूल प्रार्थना

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु॥ ४५॥

ऋ० १।८।५।२

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर! ''**नः**'' हमको ''**मृळ**''

सुखी कर तथा ''**मयस्कृधि**'' हमको मय, अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादन कर। ''**क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम, ते**'' शत्रुओं के वीरों का क्षय करनेवाले आपको अत्यन्त नमस्कारादि से परिचर्या करनेवाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर। ''**यच्छम्**'' हे रुद्र! आप हमारे पिता (जनक) और पालक हो, हमारी सब प्रजा को सुखी कर, ''**योश्च**'' और प्रजा के रोगों का भी नाश कर। जैसे ''**मनुः**'' मान्यकारक पिता ''**आयेजे**'' स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाडन करता है, वैसे आप हमारा पालन करो। हे ''**रुद्र**'' भगवन्! ''**तव, प्रणीतिषु**'' आपकी आज्ञा का 'प्रणय', अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके ''**तदश्याम**'' वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों॥ ४५॥

मूल स्तुति

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी॥ ४६॥

ऋ० १।५।१९।३

व्याख्यान—हे प्रियबन्धु विद्वानो! ''**देवो न**'' ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य की नाईं प्रकाश कर रहा है, ''**यः पृथिवीम्**'' जो पृथिव्यादि जगत् को रचके धारण कर रहा है और ''**विश्वधायाः उपक्षेति**'' विश्वधारक शक्ति का भी निवास देने और धारण करनेवाला है तथा जो सब जगत् का परममित्र, अर्थात् जैसे ''**हितमित्रो न राजा**'' प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है, अन्य कोई भी नहीं। ''**पुरःसदः, शर्मसदो न वीराः**'' जो जन ईश्वर के पुरःसद हैं, (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही **शर्मसदः**, अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं। ''**न वीराः**'' जैसे पुत्रलोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी ही रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार, सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं, जैसेकि ''**अनवद्या, पतिजुष्टेव, नारी**'' अत्यन्तोत्तम गुणयुक्त, पति की सेवा में तत्पर, पतिव्रता नारी (स्त्री) रात-दिन तन, मन, धन से अत्यन्त प्रीतियुक्त होके अनुकूल ही रहती है, वैसे प्रेम-प्रीतियुक्त होके, आओ भाई लोगो! ईश्वर की भक्ति करें और अपने सब मिलके परमात्मा से परमसुख-लाभ उठावें॥ ४६॥

प्रार्थनाविषय

सा मा स॒त्योक्ति॑ः परि॑ पातु वि॒श्वतो॒ द्यावा॑ च॒ यत्र॑ त॒तन॒न्नहा॑नि च।
विश्व॑म॒न्यन्नि वि॑शते॒ यदेज॑ति वि॒श्वाहापो॑ वि॒श्वाहोदे॑ति॒ सूर्य॑ः॥ ४७॥

ऋ० ७।८।१२।२

व्याख्यान—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! "**सा मा सत्योक्तिः**" आपकी सत्य-आज्ञा, जिसका हमने अनुष्ठान किया है, वह "**विश्वतः, परिपातु**" हमको सब संसार से सर्वथा पालित और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे, कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो "**द्यावा च**" दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे। "**यत्र**" जिस दिव्य सृष्टि में "**अहानि**" सूर्यादिकों को दिवस आदि होने के निमित्त "**ततनन्**" आपने ही विस्तारे हैं, वहाँ भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। "**विश्वमन्यत्**" आपसे अन्य (भिन्न) विश्व, अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) "**निविशते**" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। "**यदेजति**" जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित होके उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। "**विश्वाहापो विश्वाहा**" जो-जो विश्व का हन्ता (दुःख देनेवाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है, क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो। सूर्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ, जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो॥ ४७॥

मूल स्तुति

दे॒वो दे॒वाना॑मसि मि॒त्रो अद्भु॑तो॒ वसु॒र्वसू॑नामसि॒ चारु॑रध्व॒रे।
शर्म॑न्त्स्याम॒ तव॑ स॒प्रथ॑स्त॒मेऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑॥ ४८॥

ऋ० १।६।३२।३

व्याख्यान—हे मनुष्यो! वह परमात्मा कैसा है कि हम लोग उसकी स्तुति करें। हे अग्ने! परमेश्वर! आप "**देवो देवानामसि**" देवों (परम-विद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो तथा उनको परमानन्द देनेवाले हो तथा "**अद्भुतः**" अत्यन्त आश्चर्यरूप मित्र, सर्वसुखकारक, सबके सखा

हो, "**वसुर्वसूनामसि**" पृथिव्यादि वसुओं के भी वास करानेवाले हो तथा "**अध्वरे**" ज्ञानादि यज्ञ में "**चारुः**" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देनेवाले हो। हे परमात्मन्! "**सप्रथस्तमे सख्ये, शर्मन् तव**" आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप, सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दुःख प्राप्त न हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों॥ ४८॥

प्रार्थनाविषय

मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा न॑ः प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः।
आ॒ण्डा मा नो॑ मघवञ्छक्र॒ निर्भे॑न्मा न॒ः पात्रा॑ भेत्स॒हजा॑नुषाणि॥ ४९॥

ऋ० १।७।१९।३

व्याख्यान—हे "**इन्द्र**" परमैश्वर्ययुक्तेश्वर! "**मा नो वधीः**" हमारा वध मत कर, अर्थात् अपने-से अलग हमको मत गिरावै। "**मा परा दाः**" हमसे अलग आप कभी मत हो "**मा नः प्रिया०**" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै, "**आण्डा मा०**" हमारे गर्भों का विदारण मत कर। हे "**मघवन्**" सर्वशक्तिमन्! "**शक्र**" समर्थ! हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। "**मा नः, पात्राः**" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हमसे अलग मत कर। "**सहजानुषाणि**" जो-जो हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो, अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो॥ ४९॥

मूल प्रार्थना

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम्।
मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा न॑ः प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः॥ ५०॥

ऋ० १।८।६।२

व्याख्यान—हे "**रुद्र**" दुष्टविनाशकेश्वर! आप हमपर कृपा करो "**मा नो महान्तम्**" हमारे ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो तथा "**मा नो अर्भकम्**" छोटे बालक और "**उक्षन्तम्**" वीर्यसेचन-समर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "**मा, रीरिषः**" हिंसन मत करो॥ ५०॥

मूल प्रार्थना

मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ आयौ॒ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ अश्वे॑षु रीरिषः।
वी॒रान्मा नो॑ रुद्र भामि॒तो व॑धीर्ह॒विष्म॑न्तः सद॒मित्त्वा॑ हवामहे॥ ५१ ॥

ऋ० १।८।६।३

व्याख्यान—''**मा, नः , तोके**'' कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ पुत्र, ''**आयौ**'' उमर, ''**गोषु**'' गाय आदि पशु, ''**अश्वेषु**'' घोड़ा आदि उत्तम यान, हमारी सेना के शूरों में ''**हविष्मन्तः**'' यज्ञ के करनेवाले—इनमें ''**भामितः**'' क्रोधित और ''**मा रीरिषः**'' रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत होओ। हम लोग आपको ''**सदमित्त्वा, हवामहे**'' सर्वदैव आह्वान करते हैं, हे भगवन्! रुद्र परमात्मन्! आपसे यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र, धनैश्वर्यादि की रक्षा करो॥ ५१ ॥

मूल प्रार्थना

उ॒द्गा॒तेव॑ शकुने॒ साम॑ गायसि ब्रह्मपु॒त्रइ॑व॒ सव॑नेषु शंससि।
वृषे॑व वा॒जी शिशु॑मतीर॒पीत्या॑ स॒र्वतो॑ नः शकुने भ॒द्रमा व॑द
वि॒श्वतो॑ नः शकु॒ने पुण्य॒मा व॑द॥ ५२॥ ऋ० २।८।१२।२
आ॒वद॑ँस्त्वं श॑कुने भ॒द्रमा व॑द तू॒ष्णीमासी॑नः सुम॒तिं चि॑किद्धि नः।
यदु॒त्पत॒न् वद॑सि कर्क॒रिर्य॑था बृहद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑॥ ५३ ॥

ऋ० २।८।१२।३

व्याख्यान—हे ''**शकुने**'' सर्वशक्तिमन्नीश्वर! आप साम को सदा गाते हो, वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो। जैसे यज्ञ में महापण्डित सामगान करता है, वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का गान (प्रकाश) कीजिए। ''**ब्रह्मपुत्र इव**'' आप कृपा से **सवन** (पदार्थ-विद्याओं) की ''**शंससि**'' प्रशंसा करते हो, वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो। जैसे ''**ब्रह्मपुत्र इव**'' वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है, वैसे आप भी हमपर कृपा कीजिए। आप ''**वृषेव वाजी**'' सर्वशक्ति का सेचन करने और अन्नादि पदार्थों के दाता तथा महाबलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो। जैसाकि वृषभ की नाईं आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करनेवाले हो, वैसे हमपर उनकी वृष्टि करो। ''**शिशुमतीः**'' हम लोग आपकी कृपा से उत्तम-उत्तम

शिशु (सन्तानादि) को ''**अपीत्य**'' प्राप्त होके आपको ही भजें। ''**आ सर्वतो नः शकुने**'' हे शकुने! सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर! सब ठिकानों से हमारे लिए ''**भद्रम्**'' कल्याण को ''**आ वद**'' अच्छे प्रकार कहो, अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो, जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें। ''**विश्वतो नः शकुने**'' हे सबको सुख देनेवाले ईश्वर! सब जगत् के लिए ''**पुण्यम्**'' धर्मात्मक कर्म करने का ''**आ वद**'' उपदेश कर, जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करे और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो॥

''**आवदंस्त्वं शकुने**'' हे शकुने! जगदीश्वर! आप सब ''**भद्रम्**'' कल्याण का भी कल्याण, अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्ष-सुख का निरन्तर उपदेश सब जीवों को कीजिए। ''**तूष्णीमासीनः**'' हे अन्तर्यामिन्! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौनरूप से ही ''**सुमतिम्**'' सर्वोत्तम ज्ञान देओ। ''**चिकिद्धि नः**'' कृपा से हमको अपने रहने के लिए घर ही बनाओ और आपकी परमविद्या को हम प्राप्त हों। ''**यदुत्पतन्**'' उत्तम व्यवहार में पहुँचाते हुए आपका **यथा**=जिस प्रकार से ''**कर्करिर्वदसि**'' कर्त्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो, अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो, ऐसा उपदेश है कि पुरुषार्थ, अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो। जैसे ''**बृहद्वदेम विदथे**'' विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में ''**सुवीराः**'' अत्यन्त शूरवीर होके ''**बृहत्**'' (सबसे बड़े) आप जो परब्रह्म उन ''**वदेम**'' आपकी स्तुति, आपका उपदेश, आपकी प्रार्थना और उपासना तथा आपका यह बड़ा, अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें, सुनें और आपके अनुग्रह से परमानन्द को भोगें॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ओम् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां श्रीयुतविरजानन्द-सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित आर्याभिविनये प्रथमः प्रकाशः पूर्तिमागमत्। समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः॥

॥ ओ३म् ॥

तत्सत्परमात्मने नमः

अथ द्वितीयः प्रकाशः

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

—तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपा० १०। प्रथमानुवाकः १ ॥

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों। आपकी कृपा से हम लोग सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें तथा आपको ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद् परमगुर्वादि जानें, क्षणमात्र भी आपको भूलके न रहें। आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानें। आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परमपुरुषार्थी हों, एक दूसरे का दुःख न देख सकें। स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर, प्रीतिमान्, पाखण्डरहित करें ''**सह, नौ, भुनक्तु**'' तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें।

हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें, उस आनन्द से हम लोगों को क्षणमात्र भी अलग न रक्खें। ''**सह, वीर्यं करवावहै**'' आपके सहाय से परमवीर्य जो सत्य-विद्यादि, उसको परस्पर परमपुरुषार्थ से प्राप्त करें। ''**तेजस्वि नावधीतमस्तु**'' हे अनन्त विद्यामय भगवन्! आपकी कृपादृष्टि से हम लोगों का पठन-पाठन परम विद्या[युक्त] हो तथा संसार में सबसे अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्य प्रीति से, परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हममें सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें, जिससे कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़के एक सत्यसनातनमतस्थ हों, जिससे सब विद्वेष के मूल जो पाखण्ड-मत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों। ''**मा, विद्विषावहै**'' और हे जगदीश्वर! आपके सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष, 'विरोध', अर्थात् अप्रीति न रहै तथा हम लोग कभी परस्पर विद्वेष, विरोध न करें, किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या इनको परस्पर सबके सुखोपकार में परमप्रीति से लगावें।

''**ओ३म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः**'' हे भगवन्! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं—एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है, दूसरा आधिभौतिक ताप जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र, चौरादिकों से सन्ताप होता है और तीसरा जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णता इत्यादि से होता है, सो आधिदैविक ताप है। हे कृपासागर! आप इन तीनों तापों की शीघ्र निवृत्ति करें, जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहैं।

हे विश्वगुरो! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ाके सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर। हे जगन्मङ्गलमय! **(सर्वदुःखेभ्यो मोचयित्वा सर्वसुखानि प्रापय)** सब दुःखों से मुझको छुड़ाके, सब सुखों को प्राप्त कर। **(हे प्रजापते! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन परमैश्वर्येण संयोजय)** हे प्रजापते! मुझको अच्छी प्रजा—पुत्रादि, हस्त्यश्वगवादि उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य! **(सर्वरोगात्पृथक् कृत्य नैरोग्यं देहि)** सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ाके परम नैरोग्य दे। हे महाराजाधिराज! **(मनसा वाचा कर्मणा अज्ञानेन प्रमादेन वा यद्यत्पापं कृतं मया, तत्तत्सर्वं कृपया क्षमस्व ज्ञानपूर्वकपापकरणान्निवर्तयतु माम्)** मन से, वाणी से और कर्म से, अज्ञान वा प्रमाद से जो-जो पाप किया हो, किंवा करने का हो, उस-उस मेरे पाप को क्षमा कर, और ज्ञानपूर्वक पाप करने से भी मुझको रोक दे, जिससे मैं शुद्ध होके आपकी सेवा में स्थिर होऊँ। **हे न्यायाधीश! कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषयतृष्णानैष्ठुर्या-भिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्)** हे ईश्वर! कुकाम, कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ाके श्रेष्ठ काम आदि में यथावत् मुझको स्थिर कर। मैं अत्यन्त दीन होके यही माँगता हूँ कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूँ। हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राणजीवन, स्वराज्यप्रद! मेरे प्राणपति आदि आप ही हो, मेरा सहायक

आपके सिवाय कोई नहीं। हे राजाधिराज! जैसा सत्य-न्याययुक्त, अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आपकी ओर से स्थिर हो। आपके राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हमको शीघ्र ही कर। हे न्यायप्रिय! हमको भी न्यायप्रिय यथावत् कर। हे धर्माधीश! हमको धर्म में स्थिर रख। हे करुणामय पिता! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन करो॥ १॥

मूल स्तुति

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ २॥

यजुर्वेद अध्याय ४०। मन्त्र ८

व्याख्यान—"**सः, पर्यगात्**" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है। "**शुक्रम्**" सब जगत् का करनेवाला वही है। "**अकायम्**" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता। वह अखण्ड, और अनन्त निर्विकार होने से देहधारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है, इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। "**अव्रणम्**" वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है, इससे अंशांशिभाव भी उसमें नहीं है, क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता। "**अस्नाविरम्**" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता। अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता। "**शुद्धम्**" वह परमात्मा सदैव निर्मल, अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है। शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है "**अपापविद्धम्**" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है। "**कविः**" त्रैकालज्ञ (सर्ववित्), महाविद्वान्, जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले-सकता। "**मनीषी**" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी—सबके मन का दमन करनेवाला है। "**परिभूः**" सब दिशाओं और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सबके ऊपर विराजमान है। "**स्वयम्भूः**" जिसका आदिकारण माता-पिता, उत्पादक कोई नहीं, किन्तु वही सबका आदिकारणादि है। "**याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छा-**

श्वतीभ्यः समाभ्यः" उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक, वेदविद्यारूप सूर्य प्रकशित किया है और सबका आदिकारण परमात्मा है, ऐसा अवश्य मानना चाहिए। एवं, विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को ही निश्चित मानना चाहिए। विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है, क्योंकि हम लोगों के लिए उसने सब पदार्थों का दान किया है तो विद्यादान क्यों न करेगा? सर्वोत्कृष्टविद्या पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है और वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसे ही वेदपुस्तक भी हैं, अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत, वेदतुल्य वा अधिक नहीं है।

अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थप्रकाश" मेरे किये ग्रन्थ में देख लेना॥ २॥

मूल प्रार्थना

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ ३॥ यजु० ३६। १८

व्याख्यान—हे अनन्तबल महावीर ईश्वर! "**दृते**" हे दुष्टस्वभावनाशक विदीर्णकर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाश कर्म करनेवाला मुझको मत रक्खो (स्थिर मत करो), किन्तु उससे मेरे आत्मादि को उठाके विद्या, सत्य, धर्मादि शुभगुणों में सदैव स्वकृपासामर्थ्य ही से स्थित करो "**दृंह मा**" हे परमैश्वर्यवन् भगवन्! धर्मार्थकाममोक्षादि तथा विद्या-विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा "**मित्रस्येत्यादि०**" हे सर्वसुहृदीश्वर, सर्वान्तर्यामिन्! सब भूत=प्राणिमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझको देखें, सब मेरे मित्र हो जायें, कोई मुझसे किञ्चिन्मात्र भी वैर-दृष्टि न करे। "**मित्रस्याहं चे**त्यादि" हे परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब भूत प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वात्म, स्वप्राणवत् प्रिय जानूँ, अर्थात् "**मित्रस्य, चक्षुषे**त्यादि" पक्षपात छोड़के सब जीव देहधारीमात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्त्तमान करें। अन्याय से युक्त

होके किसी पर कभी हम लोग न वर्तें। यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिए परमात्मा ने उपदेश किया है, सबको यही मान्य होने योग्य है॥ ३॥

मूल स्तुति

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः॥ ४॥

यजुः० ३२। १

व्याख्यान—जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है, उसी का नाम अग्नि है (**ब्रह्म ह्यग्निः**[१]—शतपथे)—सर्वोत्तम, ज्ञानस्वरूप और जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द के अर्थ हैं ''**आदित्यो वै ब्रह्म,**[२] **वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म,**[३] **शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वजगत्कर्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मे**[४]त्यादि'' शतपथ तथा ऐतरेयब्राह्मण के प्रमाण हैं। ''**तदादित्यः**'' जिसका कभी नाश न हो और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम **आदित्य** है। ''**तद्वायुः**'' सब जगत् का धारण करनेवाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम **वायु** है। पूर्वोक्त प्रमाण से ''**तदु चन्द्रमाः**'' जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देनेवाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से **चन्द्रमा** परमात्मा को जानना। ''**तदेव, शुक्रम्**'' वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है, ''**तद् ब्रह्म**'' सो अनन्त, चेतन, सबसे बड़ा है और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख, विद्यादि सद्गुणों से बढ़ानेवाला है। ''**ता आपः**'' उसी को सर्वज्ञ, चेतन, सर्वत्र व्याप्त होने से **आपः** नामक जानना। ''**सः प्रजापतिः**'' सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करनेवाला है, अन्य कोई नहीं, उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें, अन्य को नहीं॥ ४॥

मूल प्रार्थना

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये
चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ॥ ५॥

यजु० ३६। १

---

१. शतपथ १.५.१.११॥ २. जैमिनीयोपनिषद् ३.४.९॥
३. ऐतरेयब्राह्मण २.४१॥ ४. आपो वै प्रजापतिः। शत० ८.२.३.१३॥

व्याख्यान—हे करुणाकर परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं ऋग्वेदादि-ज्ञानयुक्त (श्रवणयुक्त) होके उसका वक्ता होऊँ तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थसहित सत्यार्थमननयुक्त मन को प्राप्त होऊँ। ऐसे ही सामवेदार्थनिश्चय निदिध्यासन-सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊँ। ''**वागोजः**'' वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनो-विज्ञानबल मुझको आप देवें। अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊँ। ''**सहौजः**'' शरीरबल, नैरोग्य, दृढ़त्वादि गुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊँ। ''**मयि, प्राणापानौ**'' हे सर्वजगज्जीवनाधार! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय, सब धातुओं की शुद्धि करनेवाले तथा नैरोग्य, बल, पुष्टि, सरलगति करनेवाले, स्थिर आयुवर्धक मर्मरक्षक हों, उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आपकी कृपा से हे ईश्वर! सदैव सुखी होके आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूँ॥ ५॥

मूल स्तुति

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ६॥

यजु० ३२। १०

व्याख्यान—वह परमेश्वर हमारा ''**बन्धुः**'' दुःखनाशक और सहायक है तथा ''**जनिता**'' सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करनेवाला पिता तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि (पूर्ण कामों की सिद्धि करने वाला) वही है, ''**विधाता**'' सब जगत् का भी विधाता रचने और धारण करनेवाला एक परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं। ''**धामानि वेद भुवनानि विश्वा**'' सब 'धाम', अर्थात् अनेक लोक-लोकान्तरों को रचके अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है। वह कौन परमेश्वर है कि जिससे 'देव', अर्थात् विद्वान् लोग (**विद्वाꣳसो हि देवाः।** —शतपथब्रा०) अमृत, मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में सब दुःखों से छूटके सर्वव्यापी, पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में सदैव रहते हैं। ''**तृतीये**'' एक स्थूल जगत् (पृथिव्यादि), दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण), तीसरा जो सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में ''**अध्यैरयन्त**'' धर्मात्मा, विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा) से वर्त्तते हैं। सब बाधाओं से छूटके विज्ञानवान् शुद्ध होके देश, काल, वस्तु के परिच्छेदरहित सर्वगत ''**धामन्**'' आधारस्वरूप

परमात्मा में सदा रहते हैं, उससे जन्म-मरणादि दु:खसागर में कभी नहीं गिरते॥ ६॥

मूल प्रार्थना

यतो॑यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ऽअभ॑यं कुरु।
शं न॑: कुरु प्र॒जाभ्योऽभ॑यं नः प॒शुभ्य॑:॥ ७॥

यजु० ३६।२२

व्याख्यान—हे परमेश्वर! दयालो! जिस-जिस देश से आप ''**समीहसे**'' सम्यक् चेष्टा करते हो उस-उस देश से हमको अभय करो, अर्थात् जहाँ-जहाँ से हमको भय प्राप्त होने लगे, वहाँ-वहाँ से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो तथा प्रजा से हमको सुख करो, हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे, भय देनेवाली कभी न हो तथा पशुओं से भी हमको अभय करो, किंच किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आपकी कृपा से कभी न हो, जिससे हम लोग निर्भय होके सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य तथा आपकी भक्ति करें॥ ७॥

मूल स्तुति

वेदा॒हमे॒तं पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्णं॒ तम॑सः प॒रस्ता॑त्।
तमे॒व वि॑दि॒त्वाति॑ मृ॒त्युमे॑ति॒ नान्यः पन्था॑ वि॒द्य॒तेऽय॑नाय॥ ८॥

यजु० ३१।१८

व्याख्यान—सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (**पूर्णत्वा-त्पुरिशयनाद्वा पुरुष** इति निरुक्तोक्ते:) है, उस पुरुष को मैं जानता हूँ, अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें, उसको कभी न भूलें, अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है कि ''**महान्तम्**'' बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है। ''**आदित्यवर्णम्**'' आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है, किंच ''**तमसः परस्तात्**'' तम जो अन्धकार, अविद्यादि दोष उससे रहित ही है तथा स्वभक्त, धर्मात्मा, सत्य-प्रेमी जनों को भी अविद्यादिदोषरहित सद्य: करनेवाला वही परमात्मा है। विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। ''**तमेव विदित्वे**त्यादि'' उस

परमात्मा को जानके ही जीव मृत्यु को उल्लङ्घन कर सकता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि ''**नाऽन्य:, पन्था विद्यतेऽयनाय**'' विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है। सब मनुष्यों को इसमें ही वर्त्तना चाहिए और सब पाखण्ड और जञ्जाल अवश्य छोड़ देना चाहिए॥ ८॥

मूल प्रार्थना

तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि। वी॒र्य॑मसि वी॒र्यं॑ मयि॑ धेहि॒।
बल॑मसि॒ बलं॒ मयि॑ धे॒ह्योजो॒ऽस्योजो॒ मयि॑ धेहि।
म॒न्युर॑सि म॒न्युं मयि॑ धेहि॒। सहो॑ऽसि॒ सहो॒ मयि॑ धेहि॥ ९॥

यजु० १९।९

व्याख्यान—हे स्वप्रकाश! अनन्ततेज! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्यविज्ञान, तेज:स्वरूप हो, आप कृपादृष्टि से मुझमें वही तेज धारण करो, जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं, कभी न होऊँ। हे अनन्तवीर्य परमात्मन्! आप वीर्यस्वरूप हो, बलयुक्त हो, ''**बलं मयि धेहि**'' आप भी सर्वोत्तम बल स्थिर मुझमें भी रक्खें। हे अनन्तपराक्रम! आप ''**ओज:**'' पराक्रमस्वरूप हो सो मुझमें भी उसी पराक्रम को सदैव धारण करो। हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत्! मुझमें भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ। हे अनन्तसहनस्वरूप! मुझमें भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो, अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझमें से दूर न हों, जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूँ और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूँ॥ ९॥

मूल स्तुति

प॒रीत्य॑ भू॒तानि॑ प॒रीत्य॑ लो॒कान् प॒रीत्य॒ सर्वा॑: प्र॒दिशो॒ दिश॑श्च।
उ॒प॒स्थाय॑ प्रथम॒जामृ॒तस्या॒त्मना॒त्मान॑म॒भि सं वि॑वेश॥ १०॥

यजु० ३२।११

व्याख्यान—सब भूत आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्यन्त सब संसार में वह परमेश्वर व्याप्त होके पूर्ण भर रहा है तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर-नीचे, अर्थात् एक कणका भी उनके विना रिक्त (खाली) नहीं है। ''**प्रथमजाम्**'' प्रथमोत्पन्न जीव सब

संसार को ही समझना, सो जीवादि अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या, श्रद्धा, भक्ति से ''**ऋतस्य**'' यथार्थ, सत्यस्वरूप परमात्मा को ''**उपस्थाय**'' यथावत् जानके, उपस्थित (निकट प्राप्त) ''**अभिसंविवेश**'' अभिमुख होके उसमें प्रविष्ट, अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके, सब दु:खों से छूटके सदैव उसी परमानन्द में रहता है॥ १०॥

मूल प्रार्थना

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥ ११॥

यजु० ३४।३६

व्याख्यान—हे भगवन्! परमैश्वर्यवन्! ''**भग**'' ऐश्वर्य के दाता संसार वा परमार्थ में आप ही हो तथा ''**भग प्रणेत:**'' आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले करें, क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे ''**सत्यराध:**'' भगवन्! सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिए जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आपसे भिन्न कोई भी नहीं है। हे सत्यभग! पूर्ण ऐश्वर्य, सर्वोत्तम बुद्धि हमको आप दीजिए, जिससे हम लोग आप, आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान, ज्ञान, इनको यथावत् प्राप्त हों। सो हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को ''**उदव**'' (उद्गमय प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें ''**भग प्र नो जनय**'' हे सर्वैश्वर्योत्पादक! हमारे लिए ''**भग:**'' ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार से उत्पन्न कर। सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अनुत्तम ऐश्वर्य हमको सदा के लिए दीजिए। हे सर्वशक्तिमन्! आपकी कृपाकटाक्ष से सब दिन हम लोग उत्तम-उत्तम पुरुष, स्त्री और सन्तान भृत्यवाले हों। आपसे हमारी अधिक यही प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हममें दुष्ट और मूर्ख न रहे तथा न पैदा हो, जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्ति हो और निन्दा कभी न हो॥ ११॥

मूल स्तुति

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ १२॥

यजु० ४०।५

व्याख्यान—''**तद् (ब्रह्म) एजति**'' वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा, परन्तु वह सबमें पूर्ण है, कभी चलायमान नहीं होता, अतएव ''**तन्नैजति** (यह प्रमाण है), स्वत: वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल होके भरा है। विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं ''**तद् दूरे**'' अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वरभक्तिरहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है, अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते, इससे वे तब तक जन्म-मरणादि दु:खसागर में इधर-उधर घूमते-फिरते हैं कि जब तक उसको नहीं जानते ''**तद्वन्तिके**'' सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक, विद्वान्, विचारशील पुरुषों के वह '**अन्तिके**' अत्यन्त निकट है, किंच वह सबके आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है, सो आत्मा का भी आत्मा है, क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य, अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है। वह अखण्डैकरस सबमें व्याप रहा है, उसी को जानने से ही सुख और मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं॥ १२॥

मूल स्तुति

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक्च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा॥ १३॥ यजु० १८।२१

व्याख्यान—(यज्ञो वै विष्णु:,[1] यज्ञो वै ब्रह्म,[2] इत्याद्यैतरेय-शतपथ-

१. शतपथ १.१.२.१३॥ २. ऐतरेयब्राह्मण ८.२२॥

ब्राह्मणश्रुते:) यज्ञ—यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य, इष्टदेव परमेश्वर, उसके हेतु (उसके अर्थ तथा उसके सङ्ग) अतिश्रद्धा से (यज्ञ जो परमात्मा उसके लिए) सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें, यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि

हे सर्वस्वामिन् ईश्वर! जो यह आपकी आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें, इस कारण हम लोग आयु (उमर), प्राण, चक्षु (आँख), कान, वाणी, मन, आत्मा-जीव, ब्रह्मा तथा वेदविद्या, और विद्वान् ज्योति (सूर्यादि लोक तथा अग्न्यादि पदार्थ) तथा स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो-जो अच्छा काम हम लोग करते हैं), स्तोम=स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, चकार से अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर, महारथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं। हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं। जैसे आपकी इच्छा हो वैसा हमारे लिए आप कीजिए, परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से ''**स्वरगन्म**'' उत्तम सुख को प्राप्त हों। जब तक जीवें तब तक सदा चक्रवर्ती राज्यादि भोग से सुखी रहें और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहें। हे महादेवामृत! हम लोग **देव** (परमविद्वान्) हों तथा **अमृत** मोक्ष जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त होके जन्म-मरणरहित अमृतस्वरूप सदैव रहें। ''**वेट् स्वाहा**'' आपकी आज्ञा पालन और आपकी प्राप्ति हो जिससे, उस क्रिया में सदा तत्पर रहें। तथा जो अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो, अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो, वैसा ही सदा भाषण करें, इससे विपरीत कभी नहीं। हे कृपानिधे! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आप ही सदा करो। आपके सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले॥ १३॥

मूल स्तुति

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स
षोडशी॥ १४॥ यजु० ८।३६

व्याख्यान—जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना। जो ''**विश्वा भुवनानि**'' सब भुवन (लोक) सब पदार्थों के निवासस्थान असंख्यात लोकों को ''**आविवेश**''

प्रविष्ट होके पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है। सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है ''**त्रीणी**त्यादि'' तीन ज्योति अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है, सब जगत् के व्यवहार और पदार्थविद्या की उत्पत्ति के लिए इन तीनों को मुख्य समझना। ''**सः षोडशी**'' सोलहकला जिसने उत्पन्न की हैं, इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है। वे सोलह कला ये हैं—ईक्षण (विचार) १, प्राण २, श्रद्धा ३, आकाश ४, वायु ५, अग्नि ६, जल ७, पृथिवी ८, इन्द्रिय ९, मन १०, अन्न ११, वीर्य (पराक्रम) १२, तप (धर्मानुष्ठान) १३, मन्त्र (वेदविद्या) १४, कर्म (चेष्टा) १५, लोक और लोकों में नाम १६—इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्तकला हैं। उसकी उपासना छोड़के जो दूसरे की उपासना करता है वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता, किन्तु सदा दु:ख में ही पड़ा रहता है॥ १४॥

मूल स्तुति

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ १५॥ यजु० ३।२४

व्याख्यान—(**ब्रह्म ह्यग्निः** इत्यादि शतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्नि-ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने! आप हमारे लिए ''**सूपायनः भव**'' सुख से प्राप्त, श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अनुत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो। हे स्वस्तिदः परमात्मन्! सब दु:खों का नाश करके हमारे लिए सुख का वर्त्तमान सदैव कराओ, जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो। ''**स नः पितेव सूनवे**'' जैसे करुणामय पिता स्वपुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उसकी शोभा आपको नहीं होना, किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं॥ १५॥

मूल स्तुति

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः।
श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः॥ १६॥
उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिः। अवस्यूरसि दुवस्वान्। शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः। परिषद्योऽसि पवमानः। नभोऽसि

प्रतक्वा। मृष्टोऽसि हव्यसूदनः। ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः॥ १७॥
समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः। अजोऽस्येकपात्। अहिरसि बुध्न्यः। वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि। ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्। अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात्॥ १८॥

यजु० ५। ३१। ३२। ३३॥

व्याख्यान—हे व्यापकेश्वर! आप विभु हो, सर्वत्र प्रकाशित वैभव ऐश्वर्ययुक्त आप ही हो और कोई नहीं। विभु होके सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्व-नियमपूर्वक चलानेवाले) तथा सबके निवार्हकारक भी आप हो। हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर! आप वह्नि हैं। सब हव्य=उत्कृष्ट रसों के भेदक, आकर्षक तथा यथावत् स्थापक आप ही हो। हे आत्मन्! आप ''**श्वात्रः**'' शीघ्र व्यापनशील हो तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप, प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो। हे सर्ववित् आप ''**तुथ**'' और ''**विश्ववेदा**'' हो, ''**तुथो वै ब्रह्म**''[1] (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान, प्राप्त और लाभ करानेवाले हो॥ १६॥

हे सर्वप्रिय! आप ''**उशिक्**'' कमनीयस्वरूप, अर्थात् सब लोग जिसको चाहते हैं, क्योंकि आप ''**कविः**'' पूर्ण विद्वान् हो तथा आप ''**अङ्घारिः**'' हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु) हो, अर्थात् सर्वपापनाशक हो तथा ''**बम्भारिः**'' स्वभक्तों और सर्वजगत् के पालन तथा धारण करनेवाले हो, ''**अवस्यूरसि दुवस्वान्**'' अन्नादि पदार्थ स्वभक्त धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम हो। ''**शुन्ध्यूरसि, मार्जालीयः**'' शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों को मार्जन (निवारण) करनेवाले आप ही हो, अन्य कोई नहीं। ''**सम्राडसि कृशानुः**'' सब राजाओं के महाराज तथा कृश=दीनजनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो, ''**परिषद्योसि पवमानः**'' हे न्यायकारिन्! पवित्र सभास्वरूप, सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक सभा से ही सुखदायक आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप, पवित्रकारक, पवित्रप्रिय आप ही हो। ''**नभोऽसि प्रतक्वा**'' हे निर्विकार! आकाशवत् आप क्षोभरहित, अतिसूक्ष्म होने से आपका नाम **नभ** है तथा ''**प्रतक्वा**'' सबके ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की

१. शतपथ ४.३.४.१५॥

साक्ष्य रखनेवाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो, उसको वैसा फल मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले। ''**मृष्टोसि हव्यसूदनः**'' मृष्ट= शुद्धस्वरूप, सब पापों के मार्जक, शोधक तथा ''**हव्यसूदनः**'' मिष्ट, सुगन्ध, रोगनाशक, पुष्टिकारक इन द्रव्यों से वायु-वृष्टि की शुद्धि करने-करानेवाले हो, अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो, इससे आपका नाम ''**हव्यसूदन**'' है। ''**ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः**'' हे भगवन्! आपका ही धाम, स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थ स्वरूप है, यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो, मिथ्या में नहीं। ''**स्वः**'' आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा '**ज्योतिः**' स्वप्रकाश और सबके प्रकाशक आप ही हो॥ १७॥

''**समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः**'' हे द्रवणीय-स्वरूप! सब भूतमात्र आप ही में द्रवै हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं, आप सबके कारण हो तथा (व्याज)=सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है, इससे आप ''**विश्वव्यचाः**'' हैं ''**अजोऽस्येकपात्**'' आपका जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है। आप अनन्त हो। ''**अहिरसि बुध्न्यः**'' आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो ''**वागस्यैन्द्रमसि सदोसि**'' सब शास्त्र के उपदेशक, अनन्तविद्यास्वरूप होने से आप ''**वाक्**'' हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप ''**ऐन्द्र**'' हो। सब संसार आपमें ठहर रहा है, इससे आप ''**सदः**'' (सभा-स्वरूप) हो ''**ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्**'' सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आपकी प्राप्ति के द्वार हैं, उनको सन्तापयुक्त हम लोगों के लिए कभी मत रक्खो, किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रक्खो, जिससे हम लोग सहज से आपको प्राप्त हों ''**अध्वनामि**त्यादि'' हे अध्वपते! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझको कहीं क्लेश मत होने दे, किन्तु उन मार्गों में मुझको **स्वस्ति** (आनन्द) ही आपकी कृपा से रहे, किसी प्रकार का दु:ख हमको न रहे॥ १८॥

मूल स्तुति

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनस एनसो-

ऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसो-ऽवयजनमसि॥ १९॥ यजु० ८।१३

व्याख्यान—हे सर्वपापप्रणाशक! ''**देवकृत०**'' इन्द्रिय, विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के किये पापों के नाशक आप एक ही हो, अन्य कोई नहीं। एवं, मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परम-विद्यायुक्त जन) और ''**आत्मकृत०**'' जीव के पापों तथा ''**एनसः एनसः**'' पापों से भी बड़े पापों से आप ही '**अवयजन**' हो, अर्थात् सर्वपापरहित हो और हम सब मनुष्यों के भी पाप दूर रखनेवाले एक आप ही दयामय पिता हो। हे महानन्तविद्य! जो-जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् होके पाप किया हो, ''**सर्वस्यैनसः अवयजनमसि**'' उन सब पापों का छुड़ानेवाला आपके विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ाके शीघ्र हमको शुद्ध करो॥ १९॥

मूल स्तुति

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २०॥

यजु० १३।४

व्याख्यान—जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ (जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान, उत्पादक) है सो ही प्रथम था, वह सब जगत् का सनातन, प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है, वही परमात्मा पृथिवी से लेके प्रकृतिपर्यन्त जगत् को रचके धारण करता है, ''**कस्मै**'' (प्रजापतये, कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कः[1] तस्मै देवाय।-शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करें, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें। जो परमात्मा को छोड़के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है, उसकी और उस देशभर की दुर्दशा अत्यन्त होती है यह प्रसिद्ध है, इससे चेतो मनुष्यो! जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो, अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा॥ २०॥

१. शतपथ ६.२.२.५; ६.४.३.४; ७.३.१.२०॥

मूल प्रार्थना

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ २१॥
शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु॥ २२॥
अहानि शं भवन्तु नः शᳬरात्रीः प्रति धीयताम्।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः॥ २३॥

यजु० ३६।८।१०।११॥

व्याख्यान—हे इन्द्र! आप परमैश्वर्ययुक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो। हे रक्षक! आप कृपा से ''**नः**'' हम लोगों के ''**द्विपदे**'' जो पुत्रादि, उनके लिए परमसुखदायक होओ तथा ''**चतुष्पदे**'' हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिए भी परमसुखकारक होओ, जिससे हम लोगों को सदा आनन्द ही रहे॥ २१॥

हे सर्वनियन्तः! हमारे लिए सुखकारक, सुगन्ध, शीतल और मन्द-मन्द वायु सदैव चले। एवं, सूर्य भी सुखकारक ही तपे। तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये, अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल-काल में सुखकारक वर्षे, जिससे आपके कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहें॥ २२॥

हे क्षणादिकालपते! सब दिवस आपके नियम से सुखरूप ही हमको हों, हमारे लिए सर्वरात्रि भी आनन्द से बीतें। दिन और रात्रियों को हे भगवन्! सुखकारक ही आप धारण करो, जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहें। हे सर्वस्वामिन्! ''**इन्द्राग्नी**'' सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आपके अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों। ''**इन्द्रावरुणा रातहव्या**'' हे प्राणाधार! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिए सुखरूप ही सदा हों। ''**इन्द्रापूषणा, वाजसातौ**'' हे प्राणपते! आपकी रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राणवाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहें, जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों ''**इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः**'' (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी[1] इत्यादि शतपथे'') हे महाराज! आपके प्रबन्ध से राजा और

१. गोपथ उ० २.१॥

प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करें। तथा आपकी कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हो [कर] अत्यन्त सुख-लाभों को प्राप्त हों। आप हम पुत्र लोगों को सुखी देखके अत्यन्त प्रसन्न हों और हम भी प्रसन्नता से आप और आपकी जो सत्य आज्ञा उसमें ही तत्पर हों॥ २३॥

मूल स्तुति

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम बिभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत्॥ २४॥

यजु० ३२।९

व्याख्यान—हे वेदादिशास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य जो अमृत (मरणादि दोषरहित) मुक्तों का **धाम** निवासस्थान, सर्वगत, सबका धारण और पोषण करनेवाला, सबकी बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है, उस आपका उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है, वह **गन्धर्व** कहाता है (गच्छतीति गं=ब्रह्म, तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करनेवाला उसका नाम गन्धर्व है तथा परमात्मा के तीन **पद** हैं—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने का सामर्थ्य को तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है, वह पिता का भी पिता है, अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है॥ २४॥

मूल प्रार्थना

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिःसर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ २५॥ यजु० ३६।१७

व्याख्यान—हे सर्वदुःख की शान्ति करनेवाले! सब लोकों के ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिए शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे, अन्तरिक्ष=मध्यस्थलोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, ओषधि, तत्रस्थ गुण, वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ, विश्वेदेव जगत् के सब विद्वान् तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थ गुण, ब्रह्म=परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म चराचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिए हे

सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आपकी कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों। मुझको भी वह शान्ति प्राप्त हो, जिससे मैं भी आपकी कृपा से शान्त, दुष्टक्रोधादि उपद्रवरहित होऊँ तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्टक्रोधादि उपद्रवरहित ही हों॥ २५॥

मूल स्तुति

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥ २६॥

यजु० १६।४१

व्याख्यान—हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर! आप '**शंभव**' हो मोक्षसुखस्वरूप और मोक्ष-सुख के करनेवाले हो, आपको नमस्कार है, आप '**मयोभव**' हो, सांसारिक सुख के करनेवाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ, आप '**शङ्कर**' हो, आपसे ही जीवों का कल्याण होता है, अन्य से नहीं तथा '**मयस्कर**', अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करनेवाले आप ही हो, आप ''**शिव**'' मङ्गलमय हो तथा आप ''**शिवतर**'' अत्यन्त कल्याण-स्वरूप और कल्याणकारक हो, इससे आपको हम लोग वारम्वार ''**नमः**'' नमस्कार करते हैं (नमो नम इति यज्ञः-शतपथे)[1] श्रद्धा-भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है, सो भी मङ्गलमय ही होता है॥ २६॥

मूल प्रार्थना

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ २७॥

यजु० २५।२१

व्याख्यान—हे देवेश्वर! ''**देवः**'' विद्वानो! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें, अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यजनीयेश्वर! हे यज्ञकर्त्तारः! हम आँखों से कल्याण (मङ्गलसुख) को ही सदा देखे। हे जगदीश्वर! हे जनो! हमारे सब अङ्ग-उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें, जिससे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें जिससे हम लोग

१. शतपथ २.४.२.२४॥

आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों, अर्थात् सदा सुख में ही रहें॥ २७॥

मूल स्तुति

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽआवः।
स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥ २८॥

यजु० १३।३

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर! आप बड़ों से भी बड़े हो, आपसे बड़ा वा आपके तुल्य कोई नहीं है ''**जज्ञानम्**'' सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो, सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो, सूर्यादि लोक ''**सीमतः**'' सीमा से युक्त (मर्यादासहित) ''**सुरुचः**'' आपसे प्रकाशित हैं, ''**पुरस्तात्**'' इनको पूर्व रचके आप ही धारण कर रहे हो, ''**वि आवः**'' इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक्-पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो, ''**वेनः**'' आपके आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आपकी कामना न करे, किन्तु सब ही आपको मिला चाहते हैं तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो, सब रीति से (आ समन्तात्) रक्षक आप ही हो। सो ही परमात्मा ''**बुध्न्याः**'' अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को ''**विवः**'' विवृत=विभक्त करता है। वे अन्तरिक्षादि ''**उपमा**'' सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं।''**सत्**'' विद्यमान स्थूलजगत्''**असत्**'' अविद्यमान (अव्यक्त), चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर इस विविध जगत् की ''**योनिः**''=आदिकारण आपको ही वेदशास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं, इससे इस जगत् के माता-पिता आप ही हैं, हम लोगों के भजनीय इष्टदेव हो॥ २८॥

मूल प्रार्थना

सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ २९॥ यजु० ३६।२३॥

व्याख्यान—हे सर्वमित्रसम्पादक! आपकी कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधि ''**सुमित्रियाः**'' सुखदायक हम लोगों के लिए सदा हों, कभी प्रतिकूल न हों और जो हमसे द्वेष, अप्रीति, शत्रुता करता है तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्यायकारिन्! उसके लिए

''**दुर्मित्रियाः**'' पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल, दुःखकारक ही हों, अर्थात् जो अधर्म करे उसको आपके रचे जगत् के पदार्थ दुःखदायक ही हों, जिससे वह हमको दुःख न दे सके, पुनः हम लोग सदा सुखी ही रहें॥ २९॥

मूल स्तुति

य ऽ इमा विश्वा भुवनानि जुह्वद् ऋषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स ऽ आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ ॥ऽआ विवेश॥ ३०॥

यजु० १७।१७

व्याख्यान—''**होता**'' उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेनेवाला परमात्मा ही है।''**ऋषिः**'' सर्वज्ञ इन सब लोक-लोकान्तर भुवनों का अपने स्वसामर्थ्य कारण में होम (प्रलय करके) ''**न्यसीदत्**'' नित्य अवस्थित रहता है, सो ही हमारा पिता है, फिर जब ''**द्रविणम्**'' द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है, उस ''**आशिषा**'' सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहज स्वभाव से रच देता है। इस चराचर''**प्रथमच्छत्**'' विस्तीर्ण जगत् को रचके अनन्तस्वरूप से आच्छादित किया है और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप उसमें प्रविष्ट हो रहा है, अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है। वही हमारा निश्चित पिता है। उसकी सेवा छोड़के जो मनुष्य अन्य पाषणादि मूर्त्ति की सेवा करता है, वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त होके सदैव दुःखभागी होता है। और जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है॥ ३०॥

मूल प्रार्थना

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व
द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि
धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय॥ ३१॥

यजु० ३८।१४

व्याख्यान—हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर! हमको ''**इषे**'' उत्तमान्न के लिए पुष्ट कर, अन्न के अपचन के रोगों से बचा तथा विना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों। हे महाबल!''**ऊर्जे**'' अत्यन्त पराक्रम के लिए हमको पुष्ट कर। हे वेदोत्पादक!''**ब्रह्मणे**'' सत्य वेदविद्या के लिए बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर। हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्!

''**क्षत्राय**'' अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिए, शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। हे स्वर्गपृथिवीश! ''**द्यावापृथिवीभ्याम्**'' स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिए हमको समर्थ कर। हे सुष्ठु धर्मशील! तू धर्मकारी हो तथा धर्मस्वरूप ही हो। हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर। ''**अमेनि**'' तुम निर्वैर हो, हमको भी निर्वैर कर तथा स्वकृपादृष्टि से ''**अस्मे**'' (अस्मभ्यम्) हमारे लिए ''**नृम्णानि**'' विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर, जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दु:खी न हों। हे सर्वाधिपते! ब्राह्मण=पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त **क्षत्र**=बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त **विश**=वैश्य अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि वस्तुयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुणयुक्त ये सब स्वदेशभक्त उत्तम हमारे राज्य में हों। इन सबका धारण आप ही करो, जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे॥ ३१ ॥

मूल स्तुति

किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥ ३२ ॥

यजु० १७।१८

व्याख्यान—(प्रश्नोत्तरविद्या से—) इस संसार का अधिष्ठान क्या है? कारण तथा उत्पादक कौन है? किस प्रकार से है तथा रचना करनेवाले ईश्वर का अधिष्ठानादि क्या है तथा निमित्तकारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं? (उत्तर) ''**यत:**'' जिसका विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है, उस **विश्वकर्मा** परमात्मा ने अनन्त स्वसामर्थ्य से इस जगत् को रचा है। वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है। उसने अपने अनन्त स्वसामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से लेके ''**द्याम्**'' स्वर्गपर्यन्त रचके स्वमहिमा से ''**और्णोत्**'' आच्छादित कर रक्खा है और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं। सबका उत्पादन, रक्षण, धारणादि भी वही करता है तथा आनन्दमय है। वह ईश्वर कैसा है? कि ''**विश्वचक्षा:**'' सब संसार का

द्रष्टा है, उसको छोड़के अन्य का आश्रय जो करता है, वह दु:खसागर में क्यों न डूबेगा?॥ ३२ ॥

मूल प्रार्थना

तनूपाऽ अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽ अग्नेऽस्यायुर्मे देहि।
वर्चोदाऽ अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽ ऊनं
तन्मऽआपृण॥ ३३ ॥ यजु० ३।१७

व्याख्यान—हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने! तू हमारे शरीर का रक्षक है। सो शरीर को कृपा से पालन कर, हे महावैद्य! आप आयु (उमर) बढ़ानेवाले तथा रक्षक हो, मुझको सुखरूप उत्तमायु दीजिए। हे अनन्त विद्यातेज:! आप ''**वर्च:**'' विद्यादि तेज (प्रकाश) अर्थात् यथार्थ विज्ञान देनेवाले हो, मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ। पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो और जो-जो कुछ भी शरीरादि में ''**ऊनम्**'' न्यून हो, उस-उस को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो। किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहे। आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है, क्योंकि लड़के-लोग छोटी वा बड़ी चीज़ अथवा सुख पिता-माता को छोड़ किससे माँगें? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता, सब ऐश्वर्य तथा सुख देनेवालों में पूर्ण हो॥ ३३ ॥

मूल स्तुति

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥ ३४॥

यजु० १७।१९

व्याख्यान—विश्व (सब जगत् में) जिसका चक्षु (दृष्टि) है, जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं है तथा जिसके सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि हैं, अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता, सर्वाधारक और सर्वगत, ईश्वर व्यापक है। उसी से जो डरेगा वही धर्मात्मा होगा, अन्यथा कभी नहीं। वही विश्वकर्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है। पृथिवी से लेके स्वर्गपर्यन्त जगत् का कर्त्ता है, जिस-जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया है, उस-उसको न्यायकारी, दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं

से सम्यक् **''पतत्रैः''** प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख फल दान से सब जीवों को **''धमति''** (धमन-कम्पन) यथायोग्य जन्म-मरणादि को प्राप्त करा रहा है। उसी निराकार, अज, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय, ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिए। वही याचनीय, पूजनीय, हमारा प्रभु और स्वामी इष्टदेव है, उसी से हमको सुख होगा, अन्य से कभी नहीं॥ ३४॥

मूल प्रार्थना

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शᳬस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि॥ ३५॥

यजु० ३।३७

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर! आप **''भूः''** सदा वर्त्तमान हो **''भुवः''** वायु आदि पदार्थों के रचनेवाले **''स्वः''** सुखरूप लोक के रचनेवाले हो। हमको तीन लोक का सुख दीजिए। हे सर्वाध्यक्ष! आप कृपा करो, जिससे कि मैं पुत्र-पौत्रादि उत्तम गुणवाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजावाला होऊँ। सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से युक्त **''सुवीरः''** युद्ध में सदा विजयी होऊँ। हे महापुष्टिप्रद! आपके अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोम ओषधि, सुवर्णादि और नैरोग्यादि से सर्वपुष्टियुक्त होऊँ। हे **''नर्य''** नरों के हितकारक! मेरी प्रजा की रक्षा आप करो। हे **''शंस्य''** स्तुति करने योग्य ईश्वर! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो, हे **''अथर्य''** व्यापक ईश्वर! **''पितुम्''** मेरे अन्न की रक्षा करो। हे दयानिधे! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो॥ ३५॥

मूल स्तुति

किᳬ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥ ३६॥

यजु० १७।२०

व्याख्यान—(प्रश्न) विद्या क्या है? वन और वृक्ष किसको कहते हैं? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेकविध रचना से अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही स्वर्ग (सुखविशेष) और भूमि, मध्य सुखवाला लोक तथा नरक दुःखविशेष और सब लोकों को रचा है, उसी को वन और वृक्ष कहते हैं। हे **''मनीषिणः''** विद्वानो! जो सब भुवनों को धारण करके सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है, उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो। **''मनसा''** उसी के विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है, अन्यथा नहीं॥ ३६॥

मूल प्रार्थना

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ ३७॥ यजु० ३६।२४

व्याख्यान—वह ब्रह्म, **''चक्षुः''** सर्वदृक् चेतन है तथा देव, अर्थात् विद्वानों के लिए वा मन आदि इन्द्रियों के लिए हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है, **''पुरस्तात्''** सबका आदि प्रथम कारण वही है **''शुक्रम्''** सबका करनेवाला किंवा शुद्धस्वरूप है। **''उच्चरत्''** प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है, उसी की कृपा से हम लोग १०० वर्ष तक देखें, जीवें, सुनें, कहें, किसी के पराधीन न हों, अर्थात् ब्रह्मज्ञान, बुद्धि और पराक्रमसहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहें। ऐसी कृपा आप करें कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल (क्षीण) तथा रोगयुक्त न हो तथा सौ वर्ष से अधिक भी आप कृपा करें कि **(शत)** सौ वर्ष से उपरान्त भी हम देखें, जीवें, सुनें, कहें और स्वाधीन ही रहें॥ ३७॥

मूल स्तुति

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा। शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥ ३८॥

यजु० १७।२१

व्याख्यान—हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर! जो तुम्हारे स्वरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं, उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को करो, यथार्थविद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहें तथा इन लोकों के **''हविषि''** दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों। हे **''स्वधावः''** स्वसामर्थ्यादि धारण करनेवाले! हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ानेवाले हैं, हमारे लिए विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की सङ्गति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो। आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिए, किञ्च हम लोग तो

आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं। सर्वथा आपके अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपाकटाक्ष से सुखी करें॥ ३८॥

मूल प्रार्थना

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥ ३९॥ यजु० ३६।२

व्याख्यान—हे सर्वसन्धायकेश्वर! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय इनके छिद्र=निर्बलता, राग-द्वेष, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार, इनका निवारण (निर्दोष) करके सत्यधर्मादि में धारण आप ही करो, क्योंकि आप बृहस्पति=(सबसे बड़े) हो, सो अपनी बड़ाई की ओर देखके इस बड़े काम को आप अवश्य करें, जिससे हम लोग आप और आपकी आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढाँकें। आप सब भुवनों के पति हैं, इसलिए आपसे वारम्वार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों। हे परमात्मन्! आपके सिवाय हमारा कल्याणकारक कोई नहीं है, हमको आपका ही सब प्रकार का भरोसा है, सो आप ही पूरा करेंगे॥ ३९॥

मूल स्तुति

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् परऽ एकमाहुः॥ ४०॥

यजु० १७।२६

व्याख्यान—हे सर्वज्ञ, सर्वरचक ईश्वर! आप ''**विश्व-कर्मा**'' विविध जगदुत्पादक हो तथा ''**विमनाः**'' विविध (अनन्त) विज्ञानवाले हो, तथा ''**आद्विहाया**'' सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार, अक्षोभ्य, सर्वाधिकरण हैं। वही सब जगत् का ''**धाता**'' धारणकर्त्ता है, ''**विधाता**'' विविध विचित्र जगत् के उत्पादक है तथा ''**परम उत**'' सर्वोत्कृष्ट हैं। ''**सन्दृक्**'' यथावत् सबके पाप और पुण्यों को देखनेवाला है। जो मनुष्य उसी की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट-सुख मिलते हैं, औरों को नहीं। वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त भी सम्यक् स्वेच्छापूर्वक ''**मदन्ति**'' परमानन्द में ही सदा रहते हैं, कभी दुःख को नहीं प्राप्त नहीं होते। वह परमात्मा एक, अद्वितीय है, जिस परमात्मा के सामर्थ्य में ''**सप्त ऋषीन्**' लोक, अर्थात् पञ्च प्राण, अन्तःकरण और जीव ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं। वही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप ही रहता है। उसी की उपासना करने से हम लोगों को सदा सुख रहता है॥ ४०॥

मूल प्रार्थना

चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम॥ ४१॥

—यजुः० ३८।२०

व्याख्यान—हे महावैद्य! सर्वरोगनाशकेश्वर! चार कोनेवाली नाभि (मर्मस्थान) ''**ऋतस्य**'' ऋत [रस] की भरी, नैरोग्य और विज्ञान का घर ''**सप्रथाः**'' विस्तीर्ण सुखयुक्त आपकी कृपा से हो। तथा आपकी कृपा से ''**विश्वायुः**'' पूर्ण आयु हो। आप जैसे सर्वसामर्थ्य से विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृत सुखयुक्त विस्तारसहित सर्वायु हमको दीजिए। हे शान्तस्वरूप! हम द्वेषरहित आपकी कृपा से तथा ''**अपह्वरः**'' चलन-(कम्पन)-रहित हों, आपकी आज्ञा और आपसे भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है, इससे अन्य व्रत को कभी न मानें, किन्तु आपको ''**सश्चिम**'' सदा सेवें, यही हमारा परमनिश्चय है। इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें॥ ४१॥

मूल स्तुति

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तꣳसम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥ ४२॥

यजु० १७।२७

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो अपना ''**पिता**'' (नित्य पालन करनेवाला) ''**जनिता**'' (जनक) उत्पादक, ''**विधाता**'' सब मोक्षसुखादि कामों का विधायक (सिद्धिकर्त्ता) ''**विश्वा**'' सब भुवन, लोक-लोकान्तर की ''**धामानि**'' अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननेवाला सब जातमात्र भूतों में

विद्यमान है, जो ''**देवानां नामधा**'' दिव्य सूर्यादिलोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करनेवाला ''**एक:, एव**'' अद्वितीय वही है, अन्य कोई नहीं। वही स्वामी और पितादि अपने लोगों का है, इसमें शंका नहीं रखनी, तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान्, वेदादि शास्त्र और प्राणिमात्र प्राप्त हो रहे हैं, क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना। उस से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के सहाय से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिए॥ ४२॥

मूल प्रार्थना

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ४३॥

यजु० ३४।१

व्याख्यान—हे धर्म्यनिरुपद्रव परमात्मन्! मेरा मन सदा ''**शिवसंकल्पम्**'' धर्म-कल्याणसङ्कल्पकारी ही आपकी कृपा से हो, कभी अधर्मकारी न हो। वह मन कैसा है कि जागते हुए पुरुष का दूर-दूर आता-जाता है, दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है। अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय इन ज्योतिप्रकाशकों का भी ज्योतिप्रकाशक है, अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता। वह एक बड़ा चञ्चल, वेगवाला मन आपकी कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है ''**दैवम्**'' देव (आत्मा) का मुख्यसाधक भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकाल का ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है, उसको आप हमारे वश में यथावत् करें, जिससे हम कुकर्म में कभी न फसें, सदैव विद्या, धर्म और आपकी सेवा में ही रहें॥ ४३॥

मूल स्तुति

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥ ४४॥

यजु० १७।३१

व्याख्यान—हे जीवो! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनानेवाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो, इसी हेतु से तुम ''**नीहारेण**'' अत्यन्त अविद्या से आवृत, मिथ्यावाद, नास्तिकत्व, बकवाद करते हो। इससे दुःख ही तुमको मिलेगा, सुख नहीं। तुम लोग ''**असुतृप:**'' केवल स्वार्थसाधक, प्राणपोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो ''**उक्थशासश्चरन्ति**'' केवल विषय-भोगों के लिए ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो और जिसने ये सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो, अतएव उसको तुम नहीं जानते।

प्रश्न—वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग—ये दोनों एक हैं वा नहीं?

उत्तर—''**अन्यत् युष्माकमन्तरं बभूव**'' ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है। जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त कभी नहीं होता, इससे यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न ही हैं, किंच व्याप्य-व्यापक, आधाराधेय, (सेव्यसेवकादि) जन्यजनकादि सम्बन्ध तो जीवादि के साथ ब्रह्म का है, इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं॥ ४४॥

मूल प्रार्थना

भग एव भगवाँ२ ॥ऽ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह॥ ४५॥

यजु: ३४।३८

व्याख्यान—हे सर्वाधिपते! महाराजेश्वर! आप ''**भग:**'' परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो। हे ''**देवा:**'' विद्वानो! ''**तेन**'' (भगवतेश्वरेण प्रसन्नेन तत्सहायनैव) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों। हे ''**भग**'' परमेश्वर! सर्वसंसार ''**तन्त्वा**'' उन आपको ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है जो आपको प्राप्त होने की इच्छा न करे, सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों, फिर कभी हमसे आप और ऐश्वर्य अलग न हो। आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें और आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहें॥ ४५॥

मूल स्तुति

गणानां त्वा गणपतिᳬं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिᳬं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिᳬं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ ४६॥ यजु० २३।११

व्याख्यान—हे समूहाधिपते! आप मेरे गण=सब समूहों के पति होने से आपको 'गणपति' नाम से ग्रहण करता हूँ तथा मेरे प्रिय कर्मकारी, पदार्थ और जनों के ''पति'' पालक भी आप हैं, इससे आपको 'प्रियपति' मैं अवश्य जानूँ। एवं मेरी सब निधियों के पति होने से आपको मैं निश्चित निधिपति जानूँ। हे ''**वसो**'' सब जगत् जिस सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है, उस ''गर्भ'' स्वसामर्थ्य का धारण और पोषण करनेवाला आपको ही मैं जानूँ। सो गर्भ सबका कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है, परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं। आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को ''**अजानि**'' दूर फेंकूँ। तथा हम सब लोग आप ही की ''**हवामहे**'' अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं। सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न लगेगा॥ ४६॥

मूल प्रार्थना

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ ४७॥ यजु० १।५

व्याख्यान—हे ''**अग्ने**'' सच्चिदानन्द, स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा, सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् होके इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता, उस सत्याचरण, विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ, इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें, जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरणी, आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊँ॥ ४७॥

मूल स्तुति

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४८॥ यजु० २५।१३

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो परमात्मा अपने लोगों को ''**आत्मदाः**'' आत्मा का देनेवाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीवप्राणदाता तथा ''**बलदाः**'' त्रिविध बल—**एक** मानस विज्ञानबल, **द्वितीय** इन्द्रियबल, अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता, तेजोवृद्धि, **तृतीय** शरीरबल नाम नैरोग्य, महापुष्टि, दृढ़ाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि इन तीनों बलों का जो दाता है, जिसके ''**प्रशिषम्**'' अनुशासन (शिक्षा-मर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं, सब प्राणी-अप्राणी—जड़-चेतन, विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों का कोई कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता, जैसेकि कान से सुनना, आँख से देखना, इसका उलटा कोई नहीं कर सकता है। जिसकी ''**छाया**'' आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है। तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्टजनों के लिए वारम्वार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है। हे सज्जन मित्रो! वही एक परमसुखदायक पिता है। आओ अपने सब जने मिलके प्रेम, विश्वास और भक्ति करें, कभी उसको छोड़के अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं॥ ४८॥

मूल प्रार्थना

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथोऽअन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्र पद्ये शिवᳬं शग्मᳬं शंयोःशंयोः॥ ४९॥ यजु० ३।४३

व्याख्यान—हे पश्वादिपते! महात्मन्! आपकी ही कृपा से उत्तम-उत्तम गाय, उपलक्षण से भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा अन्य सुखदायक सब पशु और अन्न, सर्वरोगनाशक ओषधियों का उत्कृष्ट रस ''**नः**'' हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख, जिससे किसी पदार्थ के विना हमको दुःख न हो। हे विद्वानो! ''**वः**'' (युष्माकम्) तुम्हारे सङ्ग और ईश्वर की कृपा से क्षेम, कुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव-विनाश के लिए ''**शिवम्**'' मोक्ष-सुख और इस संसार सुख को मैं प्राप्त होऊँ।

मोक्ष-सुख और प्रजा-सुख इन दोनों की कामना करनेवाला जो मैं हूँ, उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिए, आपका यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना॥ ४९ ॥

मूल स्तुति

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ ५० ॥

यजु० २५। १८

व्याख्यान—हे सुख और मोक्ष की इच्छा करनेवाले जनो! उस परमात्मा को ही "**हूमहे**" हम लोग प्राप्त होने के लिए अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे। क्योंकि वह "**ईशानम्**" (सब जगत् का स्वामी) है और ईषण (उत्पादन) करने की इच्छा करनेवाला है। दो प्रकार का जगत् है—चर और अचर इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करनेवाला वही है, "**धियञ्जिन्वम्**" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है। उसको "**अवसे**" अपनी रक्षा के लिए हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं, जैसे वह ईश्वर "**पूषा**" हमारे लिए पोषणप्रद है, वैसे ही "**वेदसाम्**" धन और विज्ञानों की वृद्धि का "**रक्षिता**" रक्षक है तथा "**स्वस्तये**" निरुपद्रवता के लिए हमारा "**पायुः**" पालक वही है और "**अदब्धः**" हिंसारहित है। इसलिए ईश्वर जो निराकार, सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यो! उसको मत भूलो, विना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है॥ ५० ॥

मूल प्रार्थना

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः॥ ५१ ॥

यजु० २। १०

व्याख्यान—हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवन् ईश्वर! "**मयि**" मुझमें विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय "**दधातु**" धारण करो और "**रायः**" उत्तम धन को "**मघवानः**" परम धनवान् आप हमारे लिए "**सचन्ताम्**" सद्यः प्राप्त करो। हे सर्वकाम पूर्ण करनेवाले ईश्वर! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिए, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है)। हे भगवन्! हम

लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिए, जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहें॥ ५१ ॥

मूल प्रार्थना

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा॥ ५२ ॥ यजु० ३२। १३

व्याख्यान—हे सभापते! विद्यामय न्यायकारिन्! सभासद् सभाप्रिय! सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो, ऐसी इच्छावाले हमको आप कीजिए। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न बनावें, किन्तु आपको ही हम लोग सभापति, सभाध्यक्ष, राजा मानें। आप अद्भुत, आश्चर्य, विचित्र शक्तिमय हैं तथा प्रियस्वरूप ही हैं, इन्द्र जो जीव, उसके, कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं। "**सनिम्**" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी सब जीवों के आप ही हैं। "**मेधाम्**" विद्या, सत्यधर्मादि धारणावाली बुद्धि को हे भगवन्! मैं याचता हूँ, सो आप कृपा करके मुझको देओ। "**स्वाहा**" यही स्वकीय वाक् "**आह**" कहती है कि ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है। ऐसी वेद में ईश्वराज्ञा है, सो सब मनुष्यों को अवश्य मानना योग्य है॥ ५२ ॥

मूल प्रार्थना

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ ५३ ॥ यजु० ३२। १४

व्याख्यान—हे सर्वज्ञाग्ने! परमात्मन्! जिस विज्ञानवती, यथार्थ धारणावाली बुद्धि को "**देवगणाः**" देवसमूह (विद्वानों के वृन्द) "**उपासते**" धारण करते हैं तथा यथार्थ पदार्थविज्ञानवाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं, उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझको मेधावी कर। "**स्वाहा**" इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिए, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो जाए॥ ५३ ॥

मूल प्रार्थना

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥ ५४॥

यजु० ३२। १५

व्याख्यान—हे सर्वोत्कृष्टेश्वर! आप "**वरुण:**" वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो, स्वकृपा से मुझको "**मेधाम्**" सर्व-विद्यासम्पन्न बुद्धि दीजिए तथा "**अग्नि:**" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद "**प्रजापति:**" सब संसार के अधिष्ठाता, पालक "**इन्द्र:**" परमैश्वर्यवान् "**वायु:**" विज्ञानवान्, अनन्तबल "**धाता**" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करनेवाले आप मुझको अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिए* "**स्वाहा**" इस प्रार्थना को आप प्रीति से स्वीकार कीजिए॥ ५४॥

मूल प्रार्थना

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥ ५५॥

यजु० ३२। १६

व्याख्यान—हे महाविद्य! महाराज! सर्वेश्वर! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और "**क्षत्रम्**" राजा महाचतुर, न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों। "**श्रियम्**" सर्वोत्तम विद्यादिलक्षणयुक्त महाराज्यश्री को हम प्राप्त हों। हे "**देवा:**" विद्वानो! दिव्य ईश्वर-गुण, परमकृपा आदि उत्तम विद्यादिलक्षणसमन्वित श्री को मुझमें अचलता से धारण कराओ, उस को मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूँ और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्वसंसार के हित के लिए तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिए व्यय करूँ॥ ५५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द-
सरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्येण
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
विरचित आर्याभिविनये
द्वितीय: प्रकाश:
सम्पूर्ण:॥

---

* अनेक वार माँगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीतिद्योतनार्थ और सद्य: दानार्थ है, बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है, उसके होने से जीव को सब सुख होते हैं। इस हेतु से वारम्वार परमात्मा से बुद्धि की ही याचना करना श्रेष्ठ बात है।
(दयानन्द सरस्वती)